RNI No. 7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 57 अंक : 08 प्रकाशन तिथि : 25 जुलाई कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 अगस्त, 2020
शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

मारवाड़ की खातिर, जिसकी काठी बनी बिछौना।
रातें कटती थी आँखों में, कहाँ नसीब था सोना।।
जिसे छाँह करने में नृप ने, उत्तरीय फैलाया।
उस दुर्गा ने की मारवाड़ पर तलवारों की छाया।।

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 अगस्त, 2020

वर्ष : 56 अंक : 08

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	08
❍ मेरी साधना	✍ प्रो. रूपसिंह लिम्बड़ी	12
❍ कुल रक्षक दुर्गादास	✍ श्री उदयवीर शर्मा	17
❍ वाणी की शक्ति	✍ आचार्य श्री महाप्रज्ञ	20
❍ विचार-सरिता (षट् पञ्चाशत् लहरी)	✍ श्री विचारक	23
❍ हमारे समाज का भविष्य युवाओं के हाथों में	✍ श्री भँवरसिंह रेड़ी	24
❍ माँ-अम्बा	✍ श्री हरिसिंह परमार	27
❍ आत्मज्ञान का रहस्य	✍ संकलित	29
❍ चित्रकथा-'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'	✍ श्री ब्रजराजसिंह खरेड़ा	32
❍ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

इतिहास के साथ छेड़छाड़ :

हीनवृत्ति के लोग किसी के गौरवशाली इतिहास के संदर्भों से मन ही मन जलन महसूस करते हैं। उनका स्वयं का इतिहास ऐसा क्यों नहीं है, यह पीड़ा उन्हें इतना दर्द देती है कि ऐतिहासिक महापुरुषों के गौरवपूर्ण जीवन पर वे कीचड़ उछालने से नहीं चूकते। इससे उनका स्वयं का कोई इतिहास नहीं बनता लेकिन द्वेष की अग्नि से जले ऐसा नीच कार्य कर शायद कुछ ठण्डक महसूस करते हों। जिनका स्वभाव ऐसा है, उनको ठण्डक भी कभी नहीं मिलेगी, लेकिन वे ऐसे षड़यंत्रों से बाज नहीं आते।

विद्यार्थियों के लिये पाठ्यक्रम में आए संदर्भो को गलत प्रकार से तोड़ना-मरोड़ना तो बड़ा अपराध है। विद्यार्थी जो पढता है, उसे ही सही मानता है इसलिए ऐतिहासिक महापुरुषों के प्रति उनकी धारणा भी वही बनती है, जो उन्होंने पढा है। एक उज्ज्वल चरित्र के ऐतिहासिक नायक की चारित्रिक विशेषताओं को पाठ्यक्रम से हटा देने से उस महापुरुष के जीवन से विद्यार्थी क्या प्रेरणा ले पाएगा? कुछ लोग जो जातिगत कुण्ठाएँ पालते हैं, वे अपने इन दुष्कृत्यों से देश के भावी नागरिकों को मिलने वाली प्रेरणा से वंचित करते हैं। यह कोई साधारण कोटि का अपराध नहीं है। हम हमारे नौनिहालों को आदर्श नागरिक बनाने का कार्य करें, यह तो राष्ट्र की सेवा है, लेकिन उन नौनिहालों को हमारे आदर्श ऐतिहासिक पुरुषों की चारित्रिक विशेषताओं को न पढ़ने दें तो वे क्या शिक्षा ले रहे हैं।

जिनकी धारणा है कि महाराणा प्रताप महान नहीं, अकबर महान है तो यह स्पष्ट है कि जिसके पास ताकत है, वह दुष्चरित्र भी हो, दुराचारी हो, अन्यायी हो तो भी उसे ही वे महान कहेंगे। इस धारणा से तो सारे असुर जो देवताओं को भी परेशान करते थे, रावण, हरिण्यकश्यप, कंस आदि महान हैं। महानता मात्र शक्ति से नहीं, महानता आंकी जाती है मानवीय गुणों से। स्वतंत्रता बनाए रखने के लिये उस समय की सबसे बड़ी ताकत से वर्षों तक अपनी सीमित शक्ति से लड़ना, हर प्रकार के कष्ट को हँसते-हँसते सहकर भी अन्यायी के सामने समर्पण न करना महानता है। दुश्मन की बेगमों को घेर कर लाने पर अपने पुत्र को भी डाटना और उन बेगमों को ससम्मान उनके स्थान तक पहुँचाना महानता है। मीना बाजार लगाना महानता नहीं। आदिवासियों के बीच जीवन बिताना महानता है। चारों ओर से बादशाह के सामने झुकने के लिये दबाव आए पर न झुकना महानता है। अपने व्यवहार से पूरी प्रजा का प्रेम प्राप्त करना महानता है। बादशाह के साथ उसके डर के साथ रहने वाले थे, प्रताप के साथ लोग उसके प्रति विश्वास और आदर से साथ रहे हैं।

प्रबल शत्रु के समक्ष जो संघर्ष, लम्बा संघर्ष प्रताप ने किया, उससे विदेशी भी प्रेरणा लेते हैं। वियतनाम अमेरिका जैसी प्रबल ताकत से संघर्ष कर रहा था, वह देश प्रताप से प्रेरणा ले रहा था। वहाँ के नागरिक प्रताप के जीवन के सम्बन्ध में जानकारी पाने को आतुर रहते थे। इजरायल जो चारों ओर से दुश्मनों से घिरा हुआ है, वहाँ के लोग संघर्ष के प्रेरक प्रताप से प्रेरणा लेते रहे हैं। कोई भारत आता है तो हल्दीघाटी जाता है, वहाँ की मिट्टी को वह पवित्र मिट्टी मानकर अपने साथ ले जाता है। जहाँ स्वतंत्रता प्रेमियों का खून बहा हो, वह मिट्टी तो पवित्र हो ही जाती है। इसलिए स्वतंत्रता के लिये जूझने वालों के लिये तो वह मस्तक पर लगाने जैसी होती है।

प्रताप के बारे में, उदयसिंह के बारे में, हल्दीघाटी के बारे में, उमादे भटियाणी के बारे में, गोगाजी चौहान के बारे में, राठौड़ों की उत्पत्ति के बारे में पाठ्यपुस्तकों में फैलाई गई झूठी बातें, विकृत मानसिकता की द्योतक है। राज्य सरकार यदि इसके दुष्परिणाम के बारे में नहीं सोचती तो यह नासमझी भावी पीढ़ी के निर्माण में विकृति पैदा करेगी।

संघकार्य- कोरोना महामारी ने जैसी परिस्थिति पैदा की है, उसमें इस महामारी की समाप्ति तक शिविर व शाखा सम्बधी कार्य स्थगित हैं। पर हमारा कार्य तो परिस्थिति निरपेक्ष है। हम संघ साहित्य की पुस्तकें तो प्रतिदिन पढ़ ही रहे हैं, पर परस्पर सम्पर्क बना रहे। सहयोगी अपने-अपने क्षेत्र के स्वयंसेवकों से संवाद बनाए रखें। दूरभाष से चर्चा का विषय दें, फिर सभी अपनी-अपनी बात उस विषय पर कहें, ऐसा कुछ जगह चल रहा है। कुछ दूरभाष पर ही शाखा लगा रहे हैं। कोई भी तरीका अपनाएँ पर संघ स्मरण और अपना स्वयं का आकलन चलता रहे।

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च प्रशिक्षण शिविर गनोड़ा (बांसवाड़ा) में 27 मई, 2019 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी द्वारा शिविरार्थियों हेतु उद्‌बोधित प्रभात संदेश}

श्री मद्‌भागवत गीता में भगवान ने बताया है कि इस संसार में दो प्रकार की वृत्तियाँ हैं। दो प्रकार के लोग हैं। दो प्रकार की सम्पदाएँ हैं। एक राक्षसी वृत्ति तो एक दैवीय प्रवृत्ति। एक सद् सम्पदा और एक असुर सम्पदा। सत, रज और तम ये प्रकृति के तीन गुण हैं। हमारे शरीर के, हमारे मन-बुद्धि के ये तीन गुण हैं। ये तीन गुण हमारी प्रकृति को प्रभावित करते हैं। मनुष्य दो प्रकार के बताए हैं तो उनको प्रभावित करने वाले गुण तीन बताए हैं। ये दो प्रकार के लोग या दो प्रकार की सम्पदाएँ क्या हैं? दूसरों को कष्ट देना, आवश्यक रूप से लोगों को पीड़ा पहुँचाना, एक प्रकार के लोग इस सम्पदा के हैं। इस प्रकार के लोग आसुरी सम्पदा वाले हैं। दूसरे प्रकार के लोग जो किसी को पीड़ा नहीं देते, लोगों को सुख पहुँचाने में उनकी सहायता करते हैं। भिन्न प्रकार की सम्पदा या वृत्तियों के लोग पूर्व में बताए गये तीन गुणों के प्रभाव से होते हैं। सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण।

हमने शिविर में बौद्धिक में सुना है कि सतोगुण और तमोगुण नदी के दो किनारे की तरह हैं जो आपस में मिलते नहीं। रजोगुण है वह स्वयं नदी है। दो तट के बीच में बहता है रजोगुण। अर्थात् सतोगुण और तमोगुण आपस में मिलते नहीं। परन्तु रजोगुण सतोगुण से भी मिलता है, तमोगुण से भी मिलता है। सतोगुण स्वयं सक्रिय नहीं, कुछ कर सकता नहीं। इसी प्रकार तमोगुण भी अकेला कुछ कर सकता नहीं। करने की शक्ति-इच्छा और क्रिया रजोगुण में है। रजोगुण की प्रधानता हम राजपूतों में है। रजोगुण यदि सतोगुण से मिलकर सक्रिय होता है तो उसका जीवन क्षत्रिय का बन जाता है। और यही रजोगुण यदि तमोगुण के साथ मिलकर सक्रिय होता है तो व्यक्ति की प्रवृत्ति राक्षसी बन जाती है। प्रकृति के ये तीनों गुण हर व्यक्ति में रहते हैं, पर रजोगुण यदि सतोगुणीय बनकर सक्रिय होता है तो यही दैवीसम्पदा है और अगर तमोगुणीय बनकर सक्रिय होता है तो यही आसुरी सम्पदा है। गीता में इसे विस्तार से समझाया है। हम क्षत्रिय युवक संघ के प्रशिक्षण शिविर में इन तीनों गुणों और इन दोनों प्रकार की सम्पदाओं को समझने का प्रयास करते हैं।

तीनों गुण हर व्यक्ति, हर प्राणी में रहते हैं। हमारे अन्दर भी ये तीनों गुण हैं और उनके कारण ये दोनों प्रवृत्तियाँ भी हम सभी में बनती हैं। रजोगुण का प्रभाव सतोगुण का साथ देने का है तो वह सद्‌वृत्ति वाला व्यक्ति देवताओं का सा आचरण करता है। हमें हमारे मन, बुद्धि भटकाती रहती है, तो हम साधना द्वारा भटकाव को रोककर हमारे रजोगुण को सतोगुण की ओर मोड़ते हैं। तब हम देवता बनते हैं। अगर हम मन-बुद्धि के भटकाव में उन्हें ढील दे देते हैं तो हमारा रजोगुण तमोगुण से आक्रान्त होकर हमें राक्षस वृत्ति का दास बना देता है। दिन में कई बार हम देवता बनते हैं तो कई बार राक्षस। सावधानी न बरतें और जागृति न रखें तो भटकाव में आसुरी सम्पदा हावी रह सकती है। यहाँ शिविर का प्रशिक्षण हमारी सहायता करता है कि हम सावधान रहें, हम राक्षसी प्रवृत्ति की ओर न मुड़ें। हमारे रजोगुण अर्थात् हमारी इच्छा और क्रिया को सतोगुण से मिलाकर हमारे अन्दर दैवी-प्रवृत्ति का वास करें। दैवी प्रवृत्ति का विकास करें, उसको उन्नत बनाएँ, दृढ बनाएँ। यहाँ दिन प्रतिदिन ऐसा ही कहा जाता है, ऐसा ही गाया जाता है, ऐसा ही सुना जाता है, ऐसा ही देखा जाता है, ऐसा ही स्पर्श किया जाता है।

अर्जुन ने भगवान से पूछा था कि हवा की गति से भी तेज चलने वाले इस मन को वश में कैसे किया जाए? हम भगवान का नाम लेने बैठते हैं, देवी-देवताओं के चित्रों के समक्ष बैठते हैं, उस समय हमारे मन में विभिन्न प्रकार के विचार आए बिना नहीं रहते। मन उन विचारों में ले जाता है, मन यात्रा करता है। जब मन ही नियंत्रित नहीं

है तो इन्द्रियाँ भी नियंत्रण में नहीं रह सकती। अत: मन को बहुत मजबूत बनाने की आवश्यकता है। हमारा मन मजबूत होगा तभी हमारे मनोबल में कुछ कर सकने की शक्ति आएगी। यह शक्ति की उपासना ही है। मन का शमन, इन्द्रियों का दमन, यह करना पड़ता है। मन को समझाना पड़ता है। मन समझता है तो, इन्द्रियाँ उत्पात कर सकती हैं पर समझा हुआ मन उन पर नियंत्रण कर लेता है। मन कहाँ-कहाँ जाता है, कहाँ-कहाँ देखता है, क्या-क्या देखता है? हमारा स्वभाव है जड़ता का अत: हमारा शरीर, मन, बुद्धि सब जड़ में आ जाते हैं। चेतना तो केवल आत्म तत्त्व है जो हमारे अन्दर विराजमान है। उस पर आवरण चढा हुआ है। अत: जो गुण दोष रह गया है उसे वह आवरण देखने नहीं देता। उस व्यवधान को, उस आवरण को हटाए बिना सत्य का दर्शन नहीं हो सकता। वह सत्य जो आवृत है, उसके लिये भगवान से प्रार्थना करें और पुरुषार्थ करें कि उस आवरण को हम हटा सकें। श्री क्षत्रिय युवक संघ यही पुरुषार्थ जगाने के लिये यह सब अभ्यास करवाता है।

अर्जुन के प्रश्न के उत्तर में भगवान ने कहा था कि मन को वश में करने के दो उपाय हैं। एक वैराग्य और दूसरा अभ्यास। जहाँ-जहाँ हमारा राग हो गया है-स्त्री में राग हो गया है, पुत्र में राग हो गया है, रूप में राग हो गया है, गन्ध में राग हो गया है, स्वाद में राग हो गया है, वहाँ हमारा मन विचरण करता है, उधर ही फिसल जाता है। बार-बार फिसल जाता है, उस राग के परवश हुए उधर ही हम आकर्षित होते रहते हैं। इसीलिए मन का नियंत्रण ही बहुत बड़ी साधना है। हम यह सब देखते हैं अपने आप में घटित होते हुए। यदि हम शिविर में नहीं होते तो दस दिन पहले ही 23 तारीख की बातें करना शुरू कर देते। शिविर में थे तो 23 तारीख को भूल ही गए कि भारत में लोकसभा का चुनाव हुआ है। हमारी चुनाव के परिणाम की न जानने की इच्छा हुई और न उधर विचार ही गया। क्यों? यहाँ शिविर में हमने सारी इन्द्रियाँ एक तरफ लगा दी। उनके केन्द्र आदर्श थे। मिलाप आदर्श से करा दिया गया। इसी प्रकार जहाँ हमारा राग है, उसे हटाकर उस राग से वैराग्य पाएँ। लेकिन यह करें कैसे? अभ्यास से। जो अभ्यास हम यहाँ कर रहे हैं, उसी प्रकार अभ्यास द्वारा राग को छोड़ आदर्श की ओर बढें। परमेश्वर से प्रार्थना करें कि वह इस अभ्यास में हमारा सहयोग करें, हमें प्रेरणा दें कि हम कभी गलत कार्य न करें।

प्रतिदिन उठकर भगवान का स्मरण करें। चाहे स्नान किया हुआ हो या न किया हो। प्रात:काल का समय बहुत श्रेष्ठ है भगवान को याद करने का। 5 मिनट-10 मिनट शान्त बैठकर भगवान का नाम अवश्य लें। आपको राम अच्छा लगता है, राम का नाम लीजिए; आपको कृष्ण अच्छा लगता है, कृष्ण का नाम लीजिए; आपको शिव अच्छा लगता है, शिव का नाम लीजिए; आपको ॐ अच्छा लगता है तो ॐ का नाम लीजिए। लेकिन यहाँ भी बन्धन है। राम का नाम लिया है तो चित्र में जो धनुष लेकर खड़ा है उस राजा राम के बारे में, उस आकृति में हम बंध जाते हैं, आकर्षित होते हैं। शिव का नाम लेते हैं तो पर्वत की चोटी पर, मस्तक पर नाग, माथे पर तिलक, भूतनाथ की आकृति में आसक्ति हो जाती है। कृष्ण का नाम लें तो चक्र या बाँसुरी सहित आकृति हमें बाँध लेती है। केवल ॐ नाम ऐसा है जिसकी कोई आकृति नहीं। भगवान का असली नाम है। फिर भी प्रारम्भ में हम साकार की साधना करके निराकार की ओर बढें। परमेश्वर को जानने के लिये आप जो भी नाम लें उसका निरंतर स्मरण अवश्य करें।

भगवान ने कहा कि युद्ध तो अवश्य चल रहा है। बाहर चल रहा है, भीतर भी चल रहा है। तेरहवें अध्याय में कहा है-**'इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभि धीयते।'** यह शरीर ही क्षेत्र है जहाँ कौरव-पाण्डवों की तरह युद्ध होता है। जहाँ सद्प्रवृत्ति और बुरी प्रवृत्ति का युद्ध चल रहा है। इसे हम स्वयं अनेकों बार अनुभव करते हैं। हमको ऐसा नहीं करना चाहिए यह अच्छी बात नहीं, तो अन्य आकर्षण के कारण करने का भी मन करता है। दोनों विचारों में युद्ध चलता है। हमारी वृत्तियाँ कई बार हमें

उधर ले जाती हैं जहाँ हम भूल कर बैठते हैं। दुर्योधन ने कहा कि मैं जानता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए, लेकिन मैं उधर ही प्रवृत हो जाता हूँ, जो नहीं करना चाहिए। हम भी ऐसा करते हैं क्योंकि हमारी आसक्ति, हमारा मोह, हमारी वृत्ति, हमारा राग वह करवा लेता है। जो देखा है, जो सुना है, जो जिया है, उससे हम बंध जाते हैं। वह बंधन ही हमको उधर खींच ले जाता है। तो भगवान का स्मरण बनाये रखें, वो ही हमारी सहायता करेगा। हमारे अन्दर युद्ध चल रहा है-वे दो सम्पदाएँ ही युद्ध करवा रही हैं। बाहर वाले युद्ध में तो हम फिर भी मुकाबला कर सकते हैं, लेकिन अन्दर वाले युद्ध में हम बहुत कमजोर पड़ते हैं। क्योंकि बाहर तो हमें दिखाई देता है लेकिन अन्दर हम देख नहीं पा रहे हैं। श्री क्षत्रिय युवक संघ हमें अन्दर दर्शन कराता है। यह शरीर है इसको समझना आवश्यक है। यह क्षेत्र है और यही युद्ध का मैदान है। युद्ध में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ रहती हैं। अत: युद्ध होगा ही। यह क्षेत्र है, यही युद्ध का मैदान है। इसको समझना आवश्यक है। युद्ध में दो सेनाएँ आमने-सामने रहती हैं, यहाँ भी युद्ध में दो वृत्तियाँ आमने-सामने हैं। कोई अन्य उपाय नहीं युद्ध करो। यह युद्ध तो लड़ना पड़ेगा। क्षत्रिय की तरह लड़ना पड़ेगा। हमारे पूर्वजों ने युद्ध किए सत को बचाने के लिये, असत को नष्ट करने के लिये।

भगवान ने संदेश दिया-

परित्राणाय साधूनां विनाशय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

और इसी पर जीवन भर वे चले। पर दुष्टों का विनाश खूब किया पर दुष्ट समूल तो नष्ट नहीं हुए। सज्जनों की पूर्ण विजय हुई नहीं दुर्जनों का सत्यानाश हो नहीं सका। स्वयं उन्हीं के परिवार भी इधर-उधर होकर आपस में लड़ने लगे। लड़-लड़कर मर गए। अन्त समय में भगवान के सारथी ने पूछा-भगवान आपने अवतार के तीन कारण बताए, सज्जनों की रक्षा, दुर्जनों का नाश तथा धर्म की स्थापना। क्या अब अधर्म नहीं है? क्या अब बुरे लोग नहीं रहे? क्या सज्जनों की रक्षा हो गई? आप नहीं कर पाए तो हम कैसे कर पाएँगे? जब भगवान को बहेलिया का बाण लग चुका था तब पूछ रहे हैं कि आप तो शरीर छोड़ने वाले हो, हमारे लिये आपका क्या संदेश है? भगवान ने कहा,-जो मैंने किया वही तुम करो। यह क्षत्रिय युवक संघ का कार्य भगवान की आज्ञा का पालन है। जो भगवान ने किया वही हम कर रहे हैं। सज्जनों की रक्षा में जुट जाएँ, दुर्जनों के विनाश में जुट जाएँ, धर्म की स्थापना में जुट जाएँ। लेकिन यह कमजोर व्यक्तियों से नहीं होता। अत: स्वयं में शक्ति की साधना करें और मजबूत संगठन बनाने के लिये ऐसी शक्ति की कड़ी से कड़ी जोड़ने का क्षत्रिय युवक संघ हमें संदेश देता है जो भगवान ने गीता में हमें दिया। पाँच हजार दौ सौ वर्ष पूर्व जो दिया था, आज भी वही हमारे लिये कार्य है, वही संसार के लिये काम है। क्यों? भगवान कृष्ण क्षत्रिय थे, अर्जुन भी क्षत्रिय था। क्षत्रिय का संदेश क्षत्रिय के लिये था, वही संदेश हमारे लिये भी लागू होता है। सूक्ष्म रूप से देखें तो जीव रूपी अर्जुन अपनी समस्या बताता है, ब्रह्म रूप में कृष्ण भगवान है जो उसको समाधान बताते हैं। अंगुली पकड़कर चलना सिखाते हैं। यह जीव और ब्रह्म का संवाद है। तो हम भी उस परमेश्वर की शरण में जाएँ जिसने हमको इस संसार में भेजा है। जिसे जन्म से पूर्व हमारी माता के गर्भ में हमने महसूस किया। संसार में हमारे लिये खाने-पीने की सुविधा प्रदान की, हम क्यों दुखी होते हैं? भगवान ने सब कुछ दिया है। वही जनक है, वही रक्षक है, वही हमारा नियामक है। जब बुरी प्रवृत्तियाँ हावी होती हैं तो उन पर चोट कर उनसे मुक्त करने वाला, हमें कुमार्ग से हटाने के लिये हमें सजा देने वाला भगवान स्वयं ही है। उसको अपने अन्दर देखें। यह अन्तर दर्शन ही क्षत्रिय युवक संघ का आज के मंगल प्रभात का मंगल संदेश है।

✲

मनुष्य तो दुर्बलताओं की प्रतिमा है जिसमें देवत्व और दानवत्व दोनों का ही समावेश है। – **हितोपदेश से**

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

सामान्यता हर व्यक्ति का एक परिवार होता है और वह परिवार उसका जन्म का परिवार होता है जिसकी सीमाओं में वह जीवन पर्यन्त बना रहता है, पर महापुरुष जीवन पर्यन्त एक परिवार के होकर नहीं रहते। पूज्य श्री तनसिंहजी के एक नहीं दो परिवार थे- एक उनका जन्म का परिवार, तो दूसरा उनका संघ परिवार (श्री क्षत्रिय युवक संघ)।

जिस घर में जन्म हुआ, वह उनका जन्म का परिवार हुआ। जन्म लेने वाला अपनी चाह के अनुरूप इच्छित परिवार में जन्म नहीं ले सकता। इसमें उसका वश नहीं चलता। जो परिवार उन्हें मिला है, वह परिवार परमात्मा के कारण मिला है। जन्म का परिवार परमात्मा की देन है। पर ठीक इसके विपरीत संघ परिवार ''श्री क्षत्रिय युवक संघ'' पूज्य श्री तनसिंहजी की स्वयं की देन है, उसकी÷रचना, उनकी सृष्टि है और वे उसके सृष्टा।

पूज्य श्री तनसिंहजी भले ही साधारण लगते थे, पर दूसरे व्यक्तियों से वे एकदम अलग थे। पूज्य श्री असाधारण व विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी थे। उनका सारा जीवन विलक्षणताओं से भरा पड़ा था। उनमें असीम शक्तियाँ व क्षमताएँ थी। उनमें अपार सामर्थ्य था। ऐसे व्यक्ति एक परिवार में सिमट कर कैसे रह सकते थे? वे एक परिवार के हो के नहीं रहे। जन्म के परिवार की सीमाओं को तोड़ कर बाहर आये और इस संपूर्ण वसुन्धरा को उन्होंने अपना कर्म क्षेत्र चुना और कर्म में लग गये।

पूज्य श्री तनसिंहजी अपने जन्म के परिवार व संघ परिवार में कोई भेद नहीं रखते थे। उनके जीवन में ऐसा कभी नहीं देखा गया कि वे अपने जन्म के परिवार को अधिक महत्त्व देते थे और संघ परिवार को कम, बल्कि संघ परिवार को अधिक महत्त्व देते देखा गया है, पर ऐसा भी नहीं कि उन्होंने अपने जन्म के परिवार की उपेक्षा की हो। उनके जन्म के परिवार में उनके माता-पिता, उनकी पत्नी, उनके दो लड़कियाँ और दो लड़के हैं। उन पर विशेष ध्यान दिया हो, ऐसा कभी लगा नहीं। उनका ध्यान हमेशा स्वयं परक न होकर समाज परक रहा। उन्होंने समाज को भगवती स्वरूपा मानकर जीवन पर्यन्त उसकी सेवा-सुश्रूषा की। पूज्य श्री की अन्वेषी पैनी नजरें दोनों परिवारों को समान रूप से देखती व समझती थी, किसी की उपेक्षा नहीं की। उन्होंने दोनों परिवारों में अपना उत्तरदायित्व भली-भाँति निभाया। दोनें परिवारों को अपना प्यार व स्नेह दिया, उन्हें पोषित किया, उन्हें सम्बल दिया, उनका मार्ग दर्शन किया।

अब यहाँ पूज्य श्री तनसिंहजी के जन्म के परिवार की बात करेंगे। पूज्यश्री ने अपने जन्म के परिवार में कई उतार-चढाव देखे। परिवार में घटित घटनाओं को, मतलबी लोगों को, उनके व्यवहार व ढोंग को देख उन्होंने छोटी उम्र में ही बहुत कुछ अनुभव कर लिया था। अपने इस परिवार की बात आते ही उनके पुराने घाव हरे हो जाना, बीता घटनाक्रम व अतीत की हृदय में छिपी स्मृतियाँ उनके मानस पटल पर उभर आना स्वाभाविक थी। पूज्यश्री तनसिंहजी के परिवार की जब बात आयी तो पूज्य श्री ने अपने परिवार के सम्बन्ध में जो कहा, उन्हीं के शब्दों में- ''हृदय में गहरे से गहरी छिपी एक स्मृति झलक आई है। मेरे जीवन का एक सबसे दुखद वक्तव्य अब देना पड़ रहा है। एक नासूर हरा हो गया है। सबसे गम्भीर और ज्वलन्त प्रश्न आज खड़ा हुआ है और अपनी पराजय का मुँह छिपाने के लिये मैं आज तक इस प्रश्न को टालता आया हूँ, किन्तु हर प्रश्न का जीवन भरा उत्तर होना ही चाहिए और इसीलिए आज उस नाजुक प्रश्न को छेड़ रहा हूँ कि तुम मेरे परिवार हो।''

पूज्य श्री तनसिंहजी के पिता ठाकुर श्री बलवन्तसिंह

जी मालाणी भू-भाग में बहुत ही विख्यात, लोकप्रिय व ख्याति प्राप्त ठाकुर थे। संपूर्ण मालाणी के लोगों से उनके मधुर सम्बन्ध थे, इस कारण वे मालाणी के हर व्यक्ति के जुबान पर थे। पूज्य श्री तनसिंहजी को उनकी माता जी ''तणेराज'' के नाम से सम्बोधित करती थी। बालक तणेराज ने अभी ठीक प्रकार से चलना भी नहीं सीखा था कि कुदरत का ऐसा प्रहार ढहा कि उनके सिर पर से पितृ छाया उठ गयी, पर होनहार को कौन टाल सकता है? उनके खाने-पीने व खेलने के दिन थे, उस समय उनके पिता उन्हें छोड़ चल बसे। पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने पिता श्री के सम्बन्ध में जो कहा, उन्हीं के शब्दों में :-

''जब मैं चार वर्ष का था, उस समय ही पिता का संरक्षण और प्रेम खो चुका था। भाग्य ने मुझे केवल पैदा किया और पालन-पोषण के लिये मुझे कठिनाइयों के हाथ बेच दिया था। उनके दिल में मेरे लिये क्या उम्मीदें थी, मैं नहीं जानता किन्तु उनके स्वर्गारोहण ने मुझे हकीकत की कैद के मैदान में इतना असहाय छोड़ा कि जीवन का वह अंश मेरे बहुत ही कड़वे और सच्चे अनुभवों का क्षेत्र बन गया। वे अपने पीछे केवल यश और नाम छोड़ गये। मैंने छोटी अवस्था में ही यह अनुभव कर लिया था, कि यह संसार कितना स्वार्थी और ठगबाजी से भरा हुआ है। न वे मुझे अधिक याद हैं और न मुझे उनकी चिन्ता ही है।''

बालक तणेराज (पूज्य श्री तनसिंहजी) अपनी माँ (माँ सा) के इकलौते पुत्र थे, इसीलिए माँ सा के अत्यधिक प्यारे व लाडले थे। माँ तो ममता की खान है, स्वयं गीले में सोकर अपने लाल को सुखे में सुलाती है। बच्चे के लिये माँ से बढकर इस दुनिया में कोई नहीं। माँ सा अपने लाल के लिये क्या नहीं करती? वह अपने लाल के लिये क्या-क्या सपने देखती, क्या-क्या संकल्प संजोती, क्या-क्या विचार बुनती रहती थी। माँ सा अपने इस लाडले को अपना रस व वात्सल्य देकर उनका पालन-पोषण कर रही थी और उनका लाल तणेराज शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कला की भाँति बढने लगा, पर पूर्णिमा के पूर्व ही अमावस्या की काली छाया ने आ घेरा। उनका सुहाग और उनके लाल का पितृ साया विधाता ने असमय में ही छीन लिया। अब रह गया उनके पास उनका दुर्भाग्य और उनके कलेजे का टुकड़ा बालक तणेराज, जिन पर उनकी आशाएँ और उम्मीदें टिकी हुई थी। अब इसी लाल के सहारे शेष रही जीवन नैया खेनी थी। अब यह करुणामयी माँ अपने लाल तणेराज के लिये एक तरफ ममता और वात्सल्य उंडेल रही थी, तो दूसरी तरफ उन्हें ही पिता का फर्ज भी निभाना था। जन्म देने वाली इस माँ के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने जो कहा, जो भाव व्यक्त किये, उन्हीं के शब्दों में -

''दारिद्रय और अर्थाभाव के बीच किसी ने मुझे पाल पोस कर बड़ा किया। ममता और प्रेम मुझे मिला जरूर, किन्तु उसमें मेरे हित की भावना ही अधिक थी। धन-दौलत लोगों के पास थी और मैं स्कूल की चार आना फीस चुकाने के लिये उन आँखों को देखा करता था, जो एक नारी की आँखें थी, जिनमें सब कुछ था, किन्तु अर्थाभाव का उत्तर नहीं था, फिर भी कठिनाइयों में साहस-पूर्वक नाव को चलाए जाने का साहस मैंने देखा, जिसे देखकर मैं पुरुष होकर भी आश्चर्यचकित हूँ। मैं उसका इकलौता पुत्र था, किन्तु लगातार दो महिनों से अधिक कभी उसके पास रहा हूँ, यह मुझे याद ही नहीं है। उसका उपकार तीर्थों से भी अधिक पवित्र और समुद्र से अधिक गहरा है। मुझे आज भी मालूम नहीं, कि मेरे घर का काम कैसे चलता है, पर उसने कभी मेरे मार्ग में मुझे रोका नहीं-टोका नहीं।''

बालक तणेराज जब पढने की उम्र का हो गया, तो माँ सा ने अपने लाल को पढने के लिये पाठशाला में भेजना शुरू किया। बालक तणेराज को पाठशाला में पढने जाते देख, लोगों ने ताने कसने शुरू किये कि अब यह पढकर बड़ा बैरिस्टर बनेगा, इसमें तो माँग कर खाने की भी योग्यता नहीं है, क्या खाक पढेगा? माँ सा, लोगों के ये ताने सुनती रहती, पर वापस बोलकर उन्हें कुछ नहीं कहती। माँ सा ने मन में यह ठान लिया कि इसे जरूर पढाऊँगी, पढकर एक दिन बड़ा आदमी बनेगा। यह निश्चय कर उन्हें पढने के लिये भेजती रही।

माँ सा गाँव रामदेरिया में अपनी ढाणी (घर) में रहकर आर्थिक जुगाड़ जुटा रही थी और बालक तणेराज बाड़मेर में अकेला रहकर पढाई कर रहा था। बालक तणेराज को बाड़मेर में रहकर अनेकों तकलीफों, कठिनाइयों और कष्टों से गुजरना पड़ रहा था, यह देख माँ सा की ममता पिघल रही थी। माँ अपनी संतान को कभी भी तकलीफ में नहीं देखना चाहती, उन्हें कष्टों में नहीं देखना चाहती। वह उनके लिये स्वयं तकलीफ उठा लेगी, स्वयं कष्ट झेल लेगी, पर संतान को उस स्थिति में वह नहीं देखना चाहती, माँ सा ने लोगों के ताने सुन रखे थे। उनका अन्त:करण यही कहता था कि इसे बड़ा आदमी बनाना है तो इसे कष्ट भरी राह पर आगे बढाना होगा। माँ सा बालक तणेराज (पूज्य श्री) का भविष्य उज्ज्वल देखना चाहती थी, उन्हें बड़े स्तर पर देखना चाहती थी। माँ सा बालक तणेराज (पूज्य श्री) को जिस स्तर पर देखना चाहती थी, जिस ऊँचाई पर देखना चाहती थी, उसके लिये बालक तणेराज (पूज्य श्री) स्वयं को ही सफर तय करना था। माँ सा ने पूज्य श्री तनसिंहजी को कष्ट भरी राह का सफर तय करने योग्य बनाया, उन्हें हौसला दिया, उनकी हिम्मत बंधाई और अपने लाल को कष्ट भरी राह पर आगे बढने के लिये प्रेरित किया।

बालक तणेराज (पूज्य श्री तनसिंहजी) में क्या बीत रही है वे किस स्थिति से गुजर रहे हैं, पल-पल की खबर माँ सा रखते थे। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने जो कहा, उन्हीं के शब्दों में -

''उसने मुझे मजदूरी करते देखा, उसने मुझे पानी भरकर लाते देखा, उसने मुझे अनाज पीसते देखा, उसने मुझे रोटी बनाते देखा और उसने मुझे जिन्दगी की लम्बी राह पर लड़खड़ाते हुए, किन्तु चलने की उत्कट कामना से चलते देखा और वह भी जब मैं केवल 13-14 वर्ष का ही था। फिर राजा के सदावृत में गया, सेठ के सदावृत में गया, पढते-पढते मुझे अन्तिम छोर पर पहुँचते देखा, लेकिन पता नहीं, किन आशाओं और उम्मीदों में उसने यह सब कष्ट सहा, किन अरमानों और स्वप्नों को वह मेरे भीतर देख रही थी, किस सुख की कामना थी उसकी और क्या आज भी वह पूरी हुई? मुझे धन और यश भी मिला है, किन्तु उसके फटे पुराने कपड़ों में अब भी कोई परिवर्तन नहीं आया। लानत है, मेरी शिक्षा-दीक्षा को और लानत है मेरी सम्पन्नता को।''

पूज्य श्री तनसिंहजी अपनी जन्मदात्री माँ को भगवती के रूप में देखा करते थे। अपनी माँ की आज्ञा को वे अन्तिम आदेश मानते थे। वे बिना तर्क किये उनकी हर बात का पालन करते थे। उनकी मातृभक्ति लाजवाब थी। पूज्य श्री की प्रेरणास्रोत उनकी माँ थी, उन्हीं से वे प्रेरणा व मार्गदर्शन लेते थे। पूज्य श्री ने माँ सा के निर्देशन में ही अपनी जीवन नैया को खेया। वे जीवन भर माँ सा के पदचिन्हों पर चलते रहे।

माँ सा अपने तणेराज (पूज्य श्री) के बारे में जो विचार करते, जो चिन्तन करते, जो सोचा करते थे, वैसे ही पूज्य श्री तनसिंहजी भी श्री क्षत्रिय युवक संघ के स्वयंसेवकों के बारे में विचार करते, चिन्तन करते और उन्हीं के बारे में सदैव सोचा करते थे। माँ सा का अपने पुत्र तणेराज से जो रागात्मक सम्बन्ध था, वैसा ही रागात्मक सम्बन्ध पूज्य श्री का अपने स्वयंसेवकों से था। पूज्य श्री तनसिंहजी व माँ सा जिस स्नेह व ममता की डोर से बंधे हुए थे, उसी डोर से पूज्य श्री व उनके स्वयं सेवक भी आपस में बंधे हुए थे। जिस तरह माँ का हृदय करुणा और ममता से भरा हुआ था, उसी तरह पूज्य श्री का हृदय भी करुणा, प्यार व स्नेह से भरा हुआ था। माँ सा ने जो चाह कर अपने पुत्र तणेराज के लिये किया और करने जा रही थी, वैसा ही भाव पूज्य श्री के हृदय में अपनों के प्रति था और वे जीवन पर्यन्त उन्हीं के हित साधन में लगे रहे। अर्थात् मार्ग-दर्शन व प्रेरणा के रूप में माँ सा से पूज्य श्री को जो कुछ मिला, माँ सा से उन्होंने जो कुछ सीखा, उन्हें अपने पास न रख के प्रसाद के रूप में समाज में बांटते रहे, बांटते रहे। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने माँ सा से कहा भी -

''माँ! तुम से मुझे जो कुछ मिला, उसका चौगुना

मैंने संसार में लुटाया है। मैं अपने गरीब साथियों का सहयोगी और सखा भले ही कहलाऊँ, किन्तु वास्तव में मैं क्या हूँ, इसे तुम ही जानती हो। तुम्हारी ममता, तुम्हारा स्नेह और तुम्हारी हितैषिता की भावना ही मैंने अपने असंख्य साथियों को दी है। उनके लिये मेरा हृदय ठीक वैसा ही है, जैसे मेरे लिये तुम्हारा हृदय। यह सदा हरा भरा ही रहता है, किन्तु केवल तभी कुम्हलाता है, जब कोई मुझसे मेरे मातृत्व का प्रमाण चाहता है। मुझे मन ही मन तब दुख होता है, जब कोई मुझसे मजाक में भी यह कहता हो, कि तुमने हमें धोखा दिया अथवा बर्बाद कर दिया। अपनी संपूर्ण तन्मयता से और सर्वात्मना मैंने उन्हें अत्यन्त स्नेह दिया है, किन्तु उस स्नेह के कोई जीभ नहीं थी। कभी स्वप्न में भी यह नहीं सोचा कि दूर से दूर रहने वाला साथी भी मेरा आत्मीय नहीं है। उन्हें धोखा देना और बर्बाद करना तो दूर रहा, उनके विषय में ऐसा सोचना भी मैं अपने मातृत्व का गला घोटना समझता हूँ। यदि तुम्हारे लिये मैं कहूँ कि तुमने मुझे धोखा दिया या बर्बाद किया, तो तुम्हें कितना दुख होगा? काश! ऐसी बात कुछ और लोग भी सोचते। पर जाने दो! मैं तो तुम्हें ही अपनी कहानी कह रहा था। हाँ! तो सम्पन्न होकर भी मैंने तुम्हारे दु:खों का अन्त नहीं किया। यह सही है, लेकिन मैं कहाँ सम्पन्न हूँ? धन की नदी में तैरता हुआ भी उसकी एक बूंद नहीं पी सकता। यश और नाम के रंग मंच पर भी चढ़कर उसे ग्रहण नहीं कर सकता। राजाओं के साथ बात करते हुए भी अपने आपको साधारण से अधिक कुछ समझना अपने साथियों और सहयोगियों के प्रति विश्वासघात करना है। माँ! मेरे जीवन की कुछ ऐसी मजबूरियाँ हैं, जिन्हें मैं व्यक्त भी नहीं कर सकता। मेरे तर्क और सिद्धान्त भी अनोखे हैं। मेरी सहनशीलता भी विशिष्ट है। केवल तुम या और कोई जो मुझे अपना पुत्र समझकर मेरे विषय में सोचेगा, वही समझ सकेगा, कि यह सब क्यों और किसलिए है?

मैंने तुम्हें भौतिक सुख नहीं दिया, यह सही है, किन्तु मैंने अपने लिये भी कुछ बचाकर नहीं रखा है। जीवन में जो कुछ आया वह सब दे दिया, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार तुमने मुझे दिया। परकाजी के पास हो ही क्या सकता है, जो अपने परिवार अथवा माँ के लिये संचित कर सके। संचय ही करना आता, तो दीपक जलता ही कैसे?''

हर घर में माँ और पुत्र के बीच अपने व अपने परिवार के सम्बन्ध में संवाद चलता ही रहता है। पूज्य श्री तनसिंहजी व माँ सा के बीच भी अपने घर-बार के सम्बन्ध में, अपने भाव-अभाव के सम्बन्ध में, अपनी घर स्थिति के सम्बन्ध में, सम्पन्नता व अर्थाभाव के सम्बन्ध में संवाद चलता था। अपनी जैसी भी स्थिति थी, उसमें बने रहकर जीवन बसर करनेवाले परकाजी पूज्य श्री तनसिंहजी व माँ सा ने जीवन जीया ही नहीं, उनका जीवन तो सदैव मुस्कराता रहा। इस संवाद में पूज्य श्री तनसिंहजी ने माँ सा को सम्बोधित करते कहा-

''माँ! हम राजा नहीं हो सकते, हम सेठ नहीं हो सकते, हम तो अभावों में जन्मे, पले और बड़े हुए हैं और अभावों में ही रहकर जीवन बसर कर सकते हैं। यह हमारे जीवन का वरदान है। इसे अभिशाप भी सोचें, तो उससे क्या बनेगा? इसलिए प्रसन्न रहने की चेष्टा करो, चाहे वह प्रसन्नता कितनी ही अस्वाभाविक लगती हो। दुनिया ऐसी तमाशबीन है, जो हमारे तड़फने का तमाशा देख सकती है, किन्तु हमारी कराह को नहीं सुन सकती, कब कराहना बेकार है। यह कायरता है। मुस्काना बहादुरी है, और इसीलिए माँ! आओ हम दोनों हमारे अभावों पर मुस्करायें, हमारी यश-लोलुपता पर मुस्करायें, हमारे भौतिक सपनों पर मुस्करायें, दुनिया के धन और हमारी गरीबी पर मुस्करायें, उन पर मुस्करायें, जो हम पर मुस्कराते हैं। उन चाँदी के टुकड़ों पर मुस्करायें, जिसके लिये दुनिया पागल हुई जा रही है, उन सुन्दर वस्त्रों पर मुस्करायें, जिन्हें पहन कर दुनिया अपनी निर्लज्जता को छिपाने का यत्न करती है। संसार के उस सुख के लिये मुस्करायें, जो किसी की समझ में नहीं आ सकता, सिवाय उनके कि जो उस पर मुस्कराते हैं। बस तुमसे केवल मैं मुस्कराहट चाहता हूँ।'' **(क्रमश:)**

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–प्रोफेसर रूपसिंह लिम्बड़ी

अवतरण–41

मैं अपने मानस–घट को शक्ति के जल से भरूँ। पर सावधान! तमोगुणाक्रान्ता आसुरी–शक्ति उसमें निवास न करने लग जाए। विष का जन्म विनाशकारी होगा। तो उसे सत्व की ओर उन्मुख कर दैवी–शक्ति का आह्वान करूँ। अमृत की बूँदें मिलाऊँ उसमें। हाँ ठीक है, क्षात्रशक्ति का यही वास्तविक रूप है। निर्गुण से सगुण और सगुण से सत्वोन्मुखी बनाना है शक्ति को। तो आओ! इसी आराधना में लग जाँए!

सत–असत का भेद परख कर,
तम तोड़कर सत की करूँ आराधना।

'शक्ति' और 'क्षत्रिय' परस्पर पर्याय हैं। क्षत्रिय शब्द के उच्चारण के साथ ही शक्ति का स्मरण हो जाता है। हजारों वर्षो से हम भूमि के शासक रहे हैं। शासक का सर्वप्रथम कर्तव्य है शासितों की सुरक्षा। सुरक्षा के लिए प्रथम आवश्यकता है शक्ति। शक्तिहीन शासन नहीं कर सकते हैं। शरीर के सभी अंग समान होते हुए भी शक्ति तो भुजाओं में भर दी है। और हमारे शास्त्रों के अनुसार हमारी क्षत्रिय जाति की उत्पत्ति सर्व समर्थ श्री भगवान की भुजाओं से ही हुई मानी जाती है। अत: हमारे में शक्ति–बल होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। इसलिए साधक अपने मन रूपी घड़े में शक्तिरूप जल भरना चाहता है। जल का एक पर्याय पानी है। 'पानी' शब्द बल–शक्ति के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है। इसलिये यहाँ शक्ति को जल का रूपक बताना भी यथार्थ है। परन्तु साथ ही साधक की सावधानी का भी यहाँ परिचय होता है। वह शक्ति तो पाना चाहता है किन्तु सात्विकी शक्ति चाहिए। दैवी शक्ति चाहिए जिससे वह निर्बलों की, दुर्बलों की रक्षा कर सके। उसे आसुरी–शक्ति नहीं चाहिए। आसुरी शक्ति से कितना ही आतंक फैलाया जाए किन्तु वही शक्ति अंत में शक्तिशाली के विनाश का कारण बनती है। अत: आसुरी शक्ति का विष के समान त्याग करके दैवी शक्ति प्राप्त करने की बात साधक ने की है। दैवी–शक्ति अमृत के समान है और आसुरी शक्ति विष के समान है। क्षत्रिय अमृत तत्त्व के उपासक हैं। **'अमृतस्य पुत्रा वयम्'** अमृत तत्त्व की रक्षा, पोषण एवं वृद्धि करना क्षत्रियों का कर्तव्य है। पुण्य श्लोक पूज्य तनसिंहजी ने क्षत्रिय शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है, अमृत तत्त्व की रक्षा, पुष्टि और वृद्धि तथा विष तत्त्व का नाश क्षात्रधर्म है।

हमारा वर्तमान क्षत्रिय समाज अमृत तत्त्व की रक्षा और पुष्टि करने में तथा विष तत्त्व का नाश करने में असमर्थ पाया जाता है। आज हममें इतनी शक्ति नहीं है कि हम अपने राष्ट्र में व्याप्त आसुरी–शक्ति, आतंक, अराजकता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता इत्यादि दुराचारों से जन साधारण–निर्बल असहाय जनता की रक्षा कर सकें। इस नग्न वास्तविकता को स्वीकार करना ही होगा।

क्षत्रियों को अपने महान गुरुओं द्वारा शौर्य, हिम्मत, साहस और शस्त्र विद्या का ज्ञान इसलिए दिया जाता था कि ऐन मौके पर वे अपने कर्तव्य का पालन कर सकें। राष्ट्र में शान्ति–स्थापना एवं राष्ट्र की रक्षा के लिये शासन में नेतृत्व लेकर अपनी जान की परवाह किए बिना आंतर–बाह्य आक्रमणों का प्रतिकार करने के लिये सदैव तत्पर रहना क्षत्रिय का कर्तव्य है।

संस्कृति का रक्षक वर्ग जब निर्बल होता है, तो जन–जीवन में भोग वृति एवं प्रवृति बढ जाती है। कर्तव्य भुला दिया जाता है। द्वेष बढता है। ईर्ष्या बढती है और मनुष्य का नैतिक और सांस्कृतिक अध: पतन होता है। इन सबके मूल में क्षत्रियों की निर्बलता ही है।

हम क्षत्रिय इस राष्ट्र की राष्ट्रीय जाति हैं। हमारी बलवत्ता से राष्ट्र बलवान होता है और हमारी निर्बलता से राष्ट्र निर्बल होता है। आज हम निर्बल हो गए हैं, साधक की साधना का साध्य है बल प्राप्ति करना। क्या वास्तव में हम

निर्बल हैं? नहीं, हम आज भी निर्बल नहीं हैं, और विगत युग में भी कभी निर्बल नहीं थे। पहले भी हम बलवान थे, आज भी हम बलवान हैं। भारत के ही नहीं संसार के भी किसी इतिहासकार ने कहीं भी, कभी भी हमें कायर या निर्बल नहीं बताया है। हमारी जो निर्बलता है, वह यह है कि हम में संगठन का अभाव है। आज भी है और कल भी था। इसका मूल कारण है हमारे अपने स्वभाव का बहुत ही ऊँचा ख्याल। बहुत की छोटी-छोटी और नगण्य बातों में हमें अपने व्यक्तिगत अपमान या अवहेलना का अनुभव होता है। हमारा 'अहं' शीघ्र ही घायल हो जाता है। यही हमारी निर्बलता है और यही हमारे संगठन में सबसे बड़ा बाधक तत्त्व है। हमारे अन्दर द्वेष की जो बढी हुई मात्रा है, हमें एकता स्थापित करने में विघ्न डालती है। वर्तमान में एक दूसरी निर्बलता का रोग लागू हो गया, जिसे हम अनुशासनहीनता कहेंगे। अनुशासनहीनता और असंगठन ही हमारी निर्बलता है। इन दोनों का मूल कारण है हमारा 'अहं भाव'। अहंकार के कारण ही हम निर्बल होते रहे हैं, इतिहास इसकी गवाही देता है।

साधक ने इसी कारण तमोगण से आक्रान्त आसुरी शक्ति से बचकर दैवी शक्ति का आह्वान किया है। हमें आज दैवी शक्ति की आराधना करके अपनी दुर्बलता पर विजय प्राप्त करना है, जिससे क्षात्र-कर्तव्य का हम भलीभाँति पालन कर सकें।

अवतरण-42

मुझे संतोष नहीं है केवल तेरे गुण-गान करने में-यह तो वृद्ध अपंगों का काम है। मुझे मान्य नहीं है तेरा स्वरूप-शब्द-चित्रण, यह तो कवियों के मस्तिष्क का व्यायाम है। मैं स्वीकार नहीं करता केवल तेरी व्याख्या और लीला-वर्णन को,-यह खाली बैठों की निष्क्रियता है। तेरा केवल मानसिक चिंतन भी एकांगी और अपूर्ण है। मैं तो मन, वचन और कर्म में तेरी शक्ति का आह्वान करता हूँ। शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में तेरा साक्षात् निवास चाहता हूँ। बोल स्वीकार है माँ?

'मेरी साधना' के अवतरण साधक के हृदय की पीड़ा की अभिव्यक्ति है। प्रत्येक अवतरण में साधक वर्तमान परिस्थिति की पीड़ा से व्यथित वेदना को वाणी देता है। इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण है परमशक्ति। शक्ति ही इस जगत का निमित्त कारण है, शक्ति ही इस जगत की स्थिति का निमित्त कारण है और शक्ति ही इस जगत के लय में कारण भूत है। मेरी साधना के प्रत्येक अवतरण में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शक्ति की ही साधना है। साधक को शक्ति चाहिए। साधक क्षत्रिय है। शक्तिहीनता क्षत्रिय के लिये अभिशाप है। शक्ति और क्षत्रिय एक ही रूप के दो नाम हैं।

क्षत्रिय शरीर-क्षत्रिय जीवन तो केवल त्याग की, कर्तव्य की भूमि है। त्याग एवं कर्तव्य पालन तभी सम्भव है, जब क्षात्रत्व समर्थ तथा शक्तिशाली हो। इसलिए उसके अनुरूप शक्ति प्राप्ति तथा शक्ति संचय आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। शक्ति का अर्थ केवल शारीरिक बल ही नहीं अपितु सांघिक शक्ति, बलवान प्रभावोत्पादक संगठन है।

शक्ति की उपासना का मतलब यह नहीं है कि हम किसी देवी की मूर्ति की पूजा आरती करते रहें। उसकी लीलाओं का वर्णन करते रहें, गुणगान गाते रहें, बैठे-बैठे मानसिक चिन्तन करते रहें। यह तो केवल मानसिक व्यायाम है। जो कवि-कर्म है, वह अपाहिजों एवं अशक्तों की उपासना पद्धति है। हमें तो सिंहवाहिनी, महिषासुर मर्दनी शक्ति का क्रियात्मक स्वरूप ही स्वीकार्य है। हमने बहुत मालाएँ जपी, बहुत ध्यान में बैठे, गुणगान भी गये। आध्यात्मिक उन्नति का भी यह मार्ग नहीं है। जो अपने कर्तव्य से विमुख होकर भगवान का भजन करता है, उसे भगवान भी नहीं स्वीकारते हैं। गीता उसका प्रमाण है- **'कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम'** भगवान ने अर्जुन को अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये उसके पूर्वजों के कर्तव्य कर्म का स्मरण करवाया।

साधक अपनी कर्तव्य पूर्ति हेतु मन, वचन और कर्म में शक्ति का आह्वान करता है। माँ शक्ति से वह वरदान चाहता है कि वह उसके शरीर-मस्तिष्क और आत्मा में

आकर निवास करें। इसका मतलब यह है कि प्रत्येक क्षत्रिय का शरीर बलवान होना चाहिए। सिंह के समान बलिष्ठ होना चाहिए। शरीर का सौष्ठव ऐसा होना चाहिए, जिसे देखते ही दुश्मन का आधा बल नष्ट हो जाए। यह बल केवल शरीर का ही नहीं मन एवं बुद्धि का भी होना चाहिए। और सबसे बड़ा बल है आत्मबल। आत्मबल ही श्रेष्ठ बल है। आत्मबल वह भीतरी शक्ति है, जो विपरीत परिस्थिति में धैर्य बनकर अपने लक्ष्य पर दृढ बना रहने का सामर्थ्य प्रदान करती है। आत्मबल श्रद्धा में वृद्धि करके अपने निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने की शक्ति देता है। इसलिए साधक ने अपनी आराध्य शक्ति से वरदान माँगा है कि वह साधक के मन, वचन, कर्म और आत्मा में आकर बस जाए।

अवतरण-43

माँ शक्ति के क्षेत्र में तेरी सर्वोत्तमता की परम्परा को मैं जीवित रखना चाहता हूँ। एक अजेय और अखण्ड शक्ति का निर्माण मेरे जीवन का परम लक्ष्य है। यह कैसे होगा माँ? मेरे अकेले के शक्ति-सम्पन्न होने से? नहीं। समाज के प्रत्येक घटक को समान रूप से शक्तिशाली बनाकर सांघिक शक्ति का निर्माण करने से। तो इसके लिये जीवनव्यापी और जीवन पर्यन्त साधना की आवश्यकता होगी। कैसे प्रारम्भ करूँ इस साधना को मैं?

इस अवतरण के प्रथम वाक्य में ही साधक ने अपने जीवन का परमलक्ष्य क्या है, इसका स्पष्टीकरण कर दिया है। साधक का परम लक्ष्य है, शक्ति के क्षेत्र में 'माँ' की, मतलब परम आद्यशक्ति की सर्वोत्तम परम्परा को जीवित रखना अर्थात् निर्वाह करना और इस परम्परा के निर्वहन के लिये एक अजेय और अखण्ड शक्ति का निर्माण करना। इतने महान लक्ष्य की पूर्ति केवल एक व्यक्ति के बूते की बात नहीं है। केवल एक साधक के बलवान-शक्तिशाली और समर्थ बनने से लक्ष्य पूर्ति करना आसान नहीं है। इसीलिए ऐसे समर्थ-शक्तिशाली और बलिष्ठों का एक समूह-संगठन होना आवश्यक है। समस्त समाज, पूरी जाति बलवान होनी चाहिए। व्यक्ति समाज का एक घटक है, घटक का बलवान होना जरूरी है परन्तु जब सारे घटक बलवान बनेंगे, तब समाज बलवान होगा। इसलिए केवल एक-दो साधक की सक्रियता से काम नहीं बन पाएगा। पूरे समाज को सक्रिय बनना होगा। तब जाकर अजेय और अखण्ड बल प्राप्त होगा। यहाँ पर अजेय और अखण्ड शब्दों का प्रयोग बहुत ही उचित ढंग से किया गया है। बल जब अखण्ड होगा तभी अजेय होगा। अखण्ड शब्द का यहाँ अर्थ है-अविभाजित। कितनी ही बलवान जाति हो किन्तु यदि वह विभाजित है तो अजेय नहीं हो सकती। इतिहास यह भी बताता है कि कई निर्बल जातियों ने अपनी अविभाजित संगठित शक्ति के आधार पर विजय पायी है। अजेय होने के लिये जितने बल की आवश्यकता है उससे अधिक बल के अविभाजित होने की आवश्यकता है।

हिन्दुस्तान का इतिहास गवाही देता है कि हम कभी निर्बल नहीं थे, आज भी निर्बल नहीं हैं, परन्तु अजेय नहीं हो पाये। कारण? एक ही है-हमारा बल हमेशा विभाजित रहा है। हम संसार की जातियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, इसका हमें गर्व है, गौरव है। परन्तु हमारी मानसिकता व्यक्तिगत अस्मिता की है। हमारी व्यक्तिगत अस्मिता कई बार विकृत होकर हमारा 'अहं'-'घमण्ड' बन चुकी है। यह हमारा पुराना रोग है। हमारी तेजस्विता, हमारी प्रवीणता, हमारी विद्वता, हमारी सत्यनिष्ठा, हमारी तर्कशुद्ध न्यायपरकता एवं हमारी वफादारी की बराबरी करने की क्षमता संसार की किसी जाति में नहीं है, यह संसार का इतिहास बताता है। लेकिन केवल हमारी अहंता और मिथ्याभिमान, अपने व्यक्तिगत मान-सम्मान की भ्रामक मान्यता ने हमें एक नहीं होने दिया है। बहुत ही छोटी-छोटी बातों में हम अपमान का अनुभव करने लग जाते हैं, जो हमें एक दूसरे से आत्मीय सम्बन्ध बनाने में बाधक बनता है।

'मेरी साधना' (प्रत्येक क्षत्रिय की साधना) का लक्ष्य है- साध्य है-'क्षत्रिय युवक संघ' हमारा राष्ट्रीय संगठन है, इसकी जड़ें मजबूत बनाना और इसके प्रभाव क्षेत्र को बढाना। संघ का विकास हमारा साध्य है। जिससे हम हमारी अजेयता प्राप्त कर सकें।

हमारे सामने, साधक के सामने यह प्रश्न है-यह कैसे होगा? कब होगा? साधना के साधन क्या होंगे? साधन क्या है, प्रणाली क्या है? इसका साधन है संगठन। संगठित शक्ति का निर्माण। इसकी प्रविधि (तकनीक) है एक ही विचार के, एक ही लक्ष्य के, समान विचारधारा के लोगों का संस्कारमयी कर्मप्रणाली द्वारा निर्माण और ऐसे समान विचारधारा के लोगों को एक सूत्र में बांधना। और यह सूत्र है हमारी अजेयता और हमारी अखण्डिता की प्राप्ति। हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति का अन्तिम लक्ष्य यही है। अत: हम चाहे जिस जगह हों, चाहे जैसी परिस्थिति में हों, बस इस अखण्डित अजेयता के सूत्र में अपने आपको पिरोने में लगे रहें। इतिहास में इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। यहूदियों के पतन के बाद यहूदियों को अपना सब कुछ छोड़कर इधर-उधर भागना पड़ा। जहाँ आश्रय मिला वहीं पहुँच गए। पूरी जाति तितर-बितर हो गई। इस जाति के पुनरोत्थान की ऐसी स्थिति में कोई संभावना नजर नहीं आती थी। लेकिन उस जाति का हर एक व्यक्ति जहाँ भी था, वहाँ प्रतिदिन अपने इष्ट देव से प्रार्थना करता था। प्रार्थना के शब्द सीमित थे, पर प्रभाव असीम था। प्रार्थना के शब्द थे-'कल जेरुसलम में' 'The next day in Jerusulem' और इसका परिणाम-आज विश्व के सामने इजरायल गौरव से खड़ा है।

ऐसी दृढता से, दिल की सच्ची लगन से यदि हर एक क्षत्रिय बालक, युवक और वृद्ध अपने जीवन का लक्ष्य अपनी अजेयता और अखण्डिता की प्राप्ति को बना ले, तो हमारा पुनरोत्थान निश्चित है।

दुख और कठिनाइयों का इतिहास ही सुयश है।
मुझको कर समर्थ तू बस कष्ट के सहन में।

अवतरण-44

एक कठिनाई है साधना के व्यावहारिक पथ पर। अमूर्त, अगोचर शक्ति में मैं अपना मन कैसे रमाऊँ,.... नया साधक जो ठहरा। ढूँ ढूँ इसके किसी मूर्तिमान स्वरूप को। ऊषा की लालिमा को आंचल में समेटे हुए और अग्नि के तेजस से परिवेष्टित केसरिया ध्वज में यह क्या अंकित है? वही तो, जिसको ढूँढने के लिये मैं निकला हूँ। आओ, जरा इसका भी संदेश सुन लें।

साधक चाहता है कि वह अजेय और अखण्ड शक्ति की प्राप्ति के लिये जीवन भर साधना करता रहे, परन्तु साधना को वास्तविक व्यावहारिक रूप देने में उसे एक कठिनाई मालूम होती है। साधक नया है, अनुभव रहित है, इसलिए उसके मन में प्रश्न उठता है कि वह शक्ति, जिसे वह प्राप्त करना चाहता है, वह तो अमूर्त है, अगोचर है। मतलब यह है कि वह शक्ति स्कूल रूप में नहीं है और न वह इन्द्रियों के द्वारा जानी जा सकती है। तो फिर ऐसी इन्द्रियातीत शक्ति में मन कैसे लगाऊँ।

मनुष्य का जो शरीर है, जिसमें पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है वह तो स्थूल शरीर है। स्थूल के द्वारा स्थूल को प्राप्त करना आसान है। स्थूल के द्वारा सूक्ष्म को प्राप्त करना मुश्किल है। बल, शक्ति, सामर्थ्य इत्यादि सूक्ष्म हैं। सूक्ष्म की आराधना, साधना के लिये स्थूल का सहारा लेना पड़ता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भगवान की प्राप्ति की साधना के लिये मंदिर-मूर्ति आदि का सहारा लिया जाता है। मूर्ति प्रतीक है उस परमतत्त्व की जो सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु इस सर्वेश्वर प्रभु को हृदयेश्वर बनाने के लिये, उनका ध्यान लगाने के लिये, मन को किसी एक स्थान पर केन्द्रित करने के लिये प्रतीक को स्वीकार करना पड़ता है। उसी प्रकार हम क्षत्रियों को जिस शक्ति को प्राप्त करना है, जिस बल को हमें जुटाना है, वह भी स्थूल नहीं है। स्थूल का हस्तान्तर हो सकता है, सूक्ष्म का नहीं। बाप अपना बल बेटे को नहीं दे सकता। बेटे को स्वयं बल अर्जित करना पड़ता है।

साधक किस मूर्त वस्तु को चाहता है, जो उसे अमूर्त की प्राप्ति के लिये प्रेरणा दे? उस मूर्त स्वरूप की कल्पना करते ही उसके समक्ष केसरिया ध्वज आकर खड़ा हो जाता है। यह केसरिया ध्वज कैसा है? उगते सूर्य की लालिमा जिसमें अग्नि का तेज मिला हुआ है, वह त्याग-बलिदान-ऐश्वर्य-शौर्य एवं अखण्ड शक्ति का प्रतीक है।

यही साधक की प्रेरणा का प्रतीक बन सकता है। बस साधक को साधना का सहारा मिल गया। साधना का मार्ग मिल गया। साध्य की प्राप्ति का उपाय मिल गया।

जब प्रतीक की बात चली है, प्रेरणा स्रोत की बात चली है, तो एक बात और भी बता दूँ। हम क्षत्रिय पुरुषों के नाम के साथ 'सिंह' शब्द प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे नाम है आयुवान अब उसके साथ सिंह शब्द को लगा दिया-नाम हो गया आयुवानसिंह, अब उसे आदर-सम्मान देने के लिये और एक उपसर्ग 'जी' लगा दिया गया जिससे हो गया- 'आयुवानसिंहजी'। आप पूरे देश में जाइए, जहाँ-जहाँ क्षत्रिय जाति निवास करती है, वह उनके पुरुषों के नाम के साथ या पूरे नाम में शक्ति-बल-शौर्य और सामर्थ्य का अर्थ सूचित होता दिखाई देगा। बस, हमें अपने नामों की सार्थकता प्रमाणित करनी है। यही हमारी साधना होनी चाहिए।

हम अपनी मूल प्रवृत्ति को, मूल कर्तव्य को भूल बैठे हैं। क्या है हमारा मूल कर्तव्य? **परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्टकृताम-** शुभत्व की रक्षा करना और अशुभत्व को मिटा देना। रक्षक बलवान होना चाहिए तभी तो वह भक्षक को मार हटायेगा न। जब रक्षक निर्बल होता है, रक्षा के पात्र की रक्षा करने में पीछे हटता है तो उसे कायर कहा जाता है। गीता में भगवान कृष्ण ने यही प्रश्न पूछा है-**कुतस्त्वा कश्मलमिदं-** तुम्हारे अन्दर यह कायरता कहाँ से आ गई? कुत: कहने का तात्पर्य यह है कि यह कायरता तुम्हारा मूल स्वभाव नहीं है। यह कायरता तुम्हारा जातिगत अथवा व्यक्तिगत स्वभाव नहीं है, फिर यह दोष तुम्हारे अन्दर कहाँ से आ गया? यह आगन्तुक दोष है। ठीक वही बात हमारे पर भी लागू होती है। आज हमारी निर्बलता भी आगन्तुक है। जो आता है वह जाता है। यह प्रकृति का नियम है। इसलिए हमारी निर्बलता भी जाएगी। अवश्य जाएगी। केवल हमें इसे छोड़ने का संकल्प करना है। हमने बहुत खोया है। अब कहाँ तक हम खोते चलेंगे? हमारी त्याग की परम्परा है, खोने की नहीं।

साधक उस खोई हुई शक्ति को ढूंढने निकल पड़ा है। साधक कौन? हम सब, मेरी साधना प्रत्येक क्षत्रिय की साधना है। केसरिया ध्वज से प्रेरणा लेकर हम पूर्ण उत्साह और साहस को बटोर कर पुन: अपने गौरवान्वित इतिहास का पुनरावर्तन करने को डट जाएँ। हमें पथ भ्रष्ट करने के लिये वर्तमान में अनेक प्रलोभन हमारे पथ में खड़े हैं। अनेक तर्क किए जा रहे हैं। 'युग बदल गया है-युग का प्रभाव है, हम क्या कर सकते हैं।'आदि-आदि तर्क हमारे सामने प्रस्तुत किये जा रहे हैं। लेकिन सनातन सत्य ही सत्य है। उसमें युग को बदलने का सामर्थ्य है। बस उस सत्य का आधार लेकर हम पुन: शक्तिशाली प्रभावोत्पादक स्थिति को प्राप्त करने का व्रत लेकर काम में पूरी लगन से, निष्ठा से, प्रमाणिकता से लग जाएँ तो प्राप्तव्य अवश्य प्राप्त होगा।

अर्क

यह मत सोचो कि मैं अकेला क्या कर सकता हूँ? अकेले सूर्य की अकेली किरण सारे संसार के अंधकार को परास्त कर सकती है।

✲

प्रतिभावान ही साधना कर सकते हैं। साधना प्रतिभा का विश्वास है। अप्रतिभावान को लगता है-मेरी साधना से कुछ बनने का नहीं, क्यों न जीवन के अवसरों का जो थोड़ा बहुत आरामदेह उपयोग हो सकता है, कर लें। कोई भी साधना जल्दी परिणाम नहीं दिखाती। साधना की पहली सीढ़ी है केवल साधना के लिये साधना करना। साधना सब्र माँगती है।

- डॉ. हरिवंशराय बच्चन

कुल रक्षक दुर्गादास

– उदयवीर शर्मा

राजस्थान वीरों का प्रदेश है। राजस्थान शब्द में ही ऐसे भाव समाहित हो गए हैं कि शब्द मात्र से वीरतापूर्ण गौरव व शौर्य एवं त्याग की भावना झलकती है। अपनी जन्मभूमि राजस्थान को इस गौरव पद पर सुशोभित कराने का श्रेय यहाँ के वीर पुत्रों को है। उनमें वीरवर दुर्गादास का नाम अग्रगण्य है।

वीरवर दुर्गादास का जन्म राठौड़ वंश के करणोत कुल में हुआ था। इनके पिता आसकरणजी जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंहजी की सेना में एक सेनापति पद पर थे। इस पद पर रहकर उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। उनकी सच्चाई, वीरता, शील स्वभाव, परसेवाभाव और दानवीरता की इतनी धाक थी कि सभी इनका सम्मान करते थे। पिता के इस गौरवपूर्ण पद को उत्तरोत्तर अपनी शौर्य गरिमा से भारी करने की प्रतिभा का परिचय दुर्गादास बचपन में ही देने लगे थे और अपनी बुद्धिमानी एवं वीरता की धाक बचपन में ही जमाने लगे थे। अल्पायु में ही इन्होंने जोधपुर राज्य के ऐसे विद्रोहियों का, जो राजाज्ञा का बहाना लेकर भोली प्रजा से भूमि कर वसूल किया करते थे, दमन किया। इस सफलता पर उनके पिता को तो अत्यधिक संतोष हुआ ही, महाराज जसवन्तसिंह जी के हृदय में भी इनके लिये उच्चासन स्थापित हो गया।

सन् 1605 में आसकरणजी उज्जैन की लड़ाई में धोखे से मारे गए। उस समय वीर बालक दुर्गादास की आयु केवल 14 वर्ष की थी, पर वे होनहार थे। जसवन्तसिंह जी अपने बड़े लड़के पृथ्वीसिंह की भाँति ही उनसे प्यार करने लगे। कुछ दिनों बाद जब महाराज दक्षिण की सुबेदारी पर गए तो वीर दुर्गादास को सेनापति बनाकर अपने साथ कर लिया। यह दुर्गादास की प्रथम यात्रा थी।

जसवन्तसिंह जी को कुछ दिनों बाद काबुल भेज दिया गया। वहाँ लड़ाई में महाराज के दो लड़के भी मारे गए। पुत्रों की मृत्यु से दुखी होकर वे पेशावर में रहकर ही राज काज की देखभाल करने लगे। इस समय दुर्गादास उनके साथ थे।

अजमेर की बगावत को दबाने में जसवन्तसिंह जी के एकमात्र जीवित पुत्र पृथ्वीसिंह को सफलता मिली। इस पर औरंगजेब ने उन्हें विष से बुझी हुई पोशाक भेंट स्वरूप पहनाई जिसका नतीजा यह हुआ कि पृथ्वीसिंह कुछ कालोपरान्त संसार से विदा हो गए। इस प्रकार जसवन्तसिंह जी की गद्दी का कोई उत्तराधिकारी न बचा। मुगल बादशाह भी ऐसा ही चाहता था। इसकी दुर्गादास को बहुत चिन्ता थी।

पुत्र वियोग में जसवन्तसिंह जी की मृत्यु सन् 1678 में माघ बदी 10 के दिन हो गई। उस समय उनकी दो रानियाँ सगर्भा थी। समय पाकर फाल्गुन बदी 4 के दिन भाटी रानी के अजीतसिंह और छोटी रानी हाडी के दलथम्भन हुआ इससे राठौड़ कुल की गद्दी के उत्तराधिकारी बनने की चिन्ता दुर्गादास के हृदय से दूर हुई परन्तु पेशावर से दिल्ली आते समय मार्ग में दलथम्भन की मृत्यु हो गई। अब सबकी आँखें केवल अजीतसिंह पर ही टिकी हुई थी। सभी उसे बचाने की चिन्ता में थे।

दिल्ली पहुँचकर सभी सरदार रानी सहित रूपसिंह उदावत की हवेली में ठहरे। दूसरे दिन दुर्गादास ही अजीतसिंह के आने की सूचना देने के लिये मुगल दरबार में गया। औरंगजेब ने अजीतसिंह को प्राप्त करने के लिये बहुत लालच-लोभ एवं आश्वासन दिए परन्तु चतुर बुद्धि दुर्गादास उसकी सब चालें जानता था। इसलिए शीघ्र ही बालक अजीतसिंह को वहाँ से गुप्त रूप से मारवाड़ के डुगवा ग्राम में अपने मित्र जयदेव ब्राह्मण के घर पहुँचा दिया और इधर अजीतसिंह को कुछ बड़ा होने पर लौटाने का आश्वासन औरंगजेब को दिया।

एक वर्ष व्यतीत हुआ। औरंगजेब राठौड़ शिशु को पाने के लिये चिन्तित था। इसलिए उसने नगर कोतवाल

फौलाद को 2000 हथियार बन्द सैनिक देकर रूपसिंह उदावत की हवेली घेर लेने के लिये भेजा। इधर केवल दो ढाई सौ राजूपत सरदार ही थे। जी तोड़ सामना किया गया। सभी सरदार या तो घायल हो गए या मारे गए। रानी पहले ही अपनी कटार से स्वयं देह त्याग चुकी थी। मैदान साफ हो गया परन्तु राठौड़ शिशु उन्हें न मिल सका।

रात्रि में चन्द्रमा की शीतल किरणों से घायल दुर्गादास उठा और अपने घायल साथियों को ढाढस बंधाया। ढ़ाई सौ सरदारों में से केवल वीर मोहकमसिंह मेड़तिया, भोजराज बीदावत, रूपसिंह उदावत, महासिंह और दूधोजी चांपावत इत्यादि सरदार ही जीवित बचे थे। सभी हिम्मत बांधकर आधी रात में ही चलने की तैयारी करने लगे। महारानी का शव साथ लिया गया और सभी चल पड़े दिल्ली से दूर। आबू की घनी पहाड़ियों में रानी का दाह संस्कार किया गया। सभी ने राजकुमार को सम्भाला। मुकुन्ददास खींची को राजकुमार के लालन-पालन के लिये सावधान किया। तब जाकर वीरवर दुर्गादास को कुछ शान्ति मिली।

वीरवर दुर्गादास ने अपनी हिम्मत पर मुगल बादशाह औरंगजेब से वैर मोल लिया। कुछ देशभक्त सरदार उनके साथ हो गए और निकल पड़े आजादी के दीवाने अरावली की पहाड़ियों में। वहाँ उन देशभक्तों ने भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी और अनेक प्रकार की यातनाएँ भोगी परन्तु वीरों का प्रण अटल होता है। बादशाह ने क्रुद्ध होकर दुर्गादास की माता को मरवा डाला, कल्याणगढ़ को जलवा दिया, उसे पूर्णत: उजाड़ दिया और अपने सिपाहियों को आदेश दे दिया कि जहाँ कहीं राजपूत सरदार मिले उनको पकड़ो और मारो। ये गिने चुने देशभक्त राणा प्रताप की भाँति पहाड़ियों में भटकते फिरे परन्तु अपने प्रण से नहीं डिगे। शिवाजी की भाँति मुगलों को तंग करते रहे। कई कायर राजपूतों ने बादशाह से मिल जाने की सलाह दी परन्तु उनको दुर्गादास ने सही कहा कि मैं तो प्रण कर चुका वह कर चुका। रहूंगा तो स्वतंत्र होकर, नहीं तो जन्मभूमि के लिये लड़कर सदैव के लिये माता की पवित्र गोद में सो रहूंगा।

आठ वर्षों तक वीरवर दुर्गादास अपनी मातृभूमि की बेड़ियाँ काटने में जूझता रहा। घूम-घूमकर राजपूत शक्ति का संगठन करता रहा। सेना जुटाने में दिन रात लगा रहा जिसके फलस्वरूप उसने आठ किले बादशाह से पुन: प्राप्त कर लिये। इन किलों को अपने अधिकार में करते समय दुर्गादास को अनेक आपत्तियाँ उठानी पड़ी। उनके सहोदर भाई, पुत्र, परम मित्र इन युद्धों में काम आए परन्तु वीर ने लगन नहीं छोड़ी और अन्त में जोधपुर पर भी अपना अधिकार कर लिया।

मारवाड़ को स्वतंत्र कराने वाला वीर दुर्गादास जन जन के हृदय का हार बन गया। सभी ने उस मारवाड़ के विजेता, बहिन, बेटियों और माताओं की लाज बचाने वाले वीर के गुणगान किए। उसके सम्मान में एक विशाल जनसभा हुई। उसमें दुर्गादास ने जनता के सम्मुख सारा वृत्तान्त कह सुनाया जिसका सार इस प्रकार लिखा जा सकता है-''आप लोगों ने जो कुछ सम्मान किया है, वह आपका ही है। मातृभूमि की रक्षा करने में मुझे मुगलों से टक्कर लेनी पड़ी। मुगलों ने मेरी वृद्धा माँजी की हत्या की, घर बार लूटा, कल्याणगढ़ फूंक दिया परन्तु इन सब कष्टों को सहने की शक्ति आप लोगों ने मुझे दी। आपकी सहायता से आज जोधपुर जीता गया परन्तु अभी भी युद्ध शान्त नहीं हुआ है। पुन: आक्रमण होगा। इसलिए आप सब एक बार पुन: संगठित हो जाइए विजय अपनी होगी। यदि आप लोग अपने धर्म, यज्ञोपवीत, मन्दिर मूर्तियों की रक्षा चाहते हैं तो संगठित हो जाइए। मारो या मर मिटो, आजादी या मौत का प्रण करो। बलिदान से ही जीत प्राप्त होगी। अजीतसिंह अभी जिन्दा है। समय पर आपके सम्मुख आवेगा।''

यह भाषण सुनकर जनता में जोश उमड़ आया और सभी ने देश रक्षा की प्रतिज्ञा की। जन जन में जोश छा गया।

थोड़े दिनों बाद औरंगजेब ने अपने पुत्र अकबर शाह को दुर्गादास पर आक्रमण करने के लिये भेजा। युद्ध हुआ परन्तु शाहजादे ने शीघ्र ही आत्म-समर्पण कर दिया और मित्रता कर ली। दुर्गादास ने उसे दिल्ली का ताज दिलवाने

का वचन दिया। वीर राठौड़ के हृदय में एक टीस जल रही थी। अत: अकबर को साथ लेकर दिल्ली पर विजय पाने की योजना बनाई। अजमेर के निकट देववाड़ी की पहाड़ियों में मोर्चा लिया। सेनाएँ मैदान में आने वाली थी कि औरंगजेब की चाल सफल हो गई। अकबर के नाम जाली पत्र दुर्गादास की छावनी में डालकर औरंगजेब ने अकबर शाह के प्रति दुर्गादास का अविश्वास करा दिया। फिर भी दुर्गादास अकेले ही अपने सरदारों को साथ लेकर अजमेर के निकट युद्ध की तैयारियाँ करने लगे।

तंग आकर औरंगजेब ने जुल्फिकार खाँ के द्वारा संधि प्रस्ताव भेजा और कहला भेजा कि तेजकरण को पाँच हजार सवारों का नायक बना दिया जावेगा। मारवाड़ पर सारे अधिकार जसवन्तसिंह जी जैसे ही पुन: प्राप्त हो जावेंगे। सभी जब्त जागीरें लौटा दी जावेंगी। इन सबके अतिरिक्त चालीस हजार अशर्फियाँ भी भेंट में भेजी। परन्तु दुर्गादास सब चालाकियाँ समझते थे। एक न मानी। संधि प्रस्ताव ठुकरा दिया। युद्ध की तैयारियाँ हो गई। दुर्गादास ने बंगाल, मद्रास, पंजाब आदि सभी ओर से औरंगजेब की आने वाली सेनाओं को मार्ग में ही रोकने के लिये मोर्चे लगाए ताकि बाहर से आने वाली सहायता बादशाह को न मिल सके।

अजमेर के निकट के पहाड़ी मैदान में युद्ध हुआ। औरंगजेब चारों ओर से घिर गया और भाग खड़ा हुआ। अजमेर पर दुर्गादास का अधिकार हो गया। औरंगजेब ने अन्त में स्थायी रूप से संधि करली और अपने हाथ से अजमेर में ही आठ वर्ष के बालक अजीतसिंह के राजतिलक किया। स्वामी भक्त नाथू ने महाराजा जसवन्तसिंह जी की दी हुई लोहे की सन्दूकची भी सौंपी जिसे वीर दुर्गादास ने भरे दरबार में महाराजा अजीतसिंह को समर्पित कर दी। उससे महाराज का राजमुकुट, अँगूठी एवं बहुमूल्य रत्न थे। इस सन्दूकची की रक्षा जो जान देकर की, जा रही थी, क्योंकि जसवन्तसिंह जी ने मरते समय इसकी रक्षा करने का भार सरदारों पर छोड़ा था और कहा था कि राठौड़ वंश में से ही कोई उत्तराधिकारी जोधपुर की गद्दी पर बैठने पर इसे खोलना, देखना और उसे भेंट कर देना। जसवन्तसिंह जी का आदेश आज पूर्ण हुआ। सभी ने इस कार्य के लिये वीरवर दुर्गादास की-प्रशंसा की।

इन आठ वर्षों की अवधि में देव मन्दिरों को तोड़कर मस्जिदें बनवाई गईं, धर्म पुस्तकों को जलवाया गया, ब्राह्मणों के जनेऊ तुड़वाए गए, सती अबलाओं का सतीत्व नष्ट किया गया, तीर्थ यात्रियों पर जजिया कर लगाया गया, बिना अपराध ही अनेक निर्दोष राजपूत वीरों को बन्दीगृह में कष्ट दिए गए, बहुत सारे फांसी पर लटकाए गए। इन सब अत्याचारों से जनता ऊब चुकी थी। इन सब यातनाओं से मुक्ति दिलाने का श्रेय वीर दुर्गादास को ही है।

राजतिलक के लगभग तीन माह पश्चात् अजीतसिंह प्रजा की प्रार्थना पर जोधपुर आ गए। प्रजा अपने राजा को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। नया मंत्रिमण्डल बनाया गया।सभी दुर्गादास की राय से राजकाज करने लगे। प्रजा सुख चैन से रहने लगी। टूट-फूटे किलों की उचित रूप से व्यवस्था की गई। नए किले बनाए गए। उजड़ा हुआ कल्याणगढ़ पुन: बसाया गया।

दस वर्षों तक दुर्गादास ने जोधपुर का राजकाज देखा। अब अजीतसिंह राजकाज सम्भालने लग गए थे। इसलिए दुर्गादास ने सम्वत् 1758 वि. में महाराज अजीतसिंह को शासन भार सौंप दिया। अजीतसिंह शासन चलाने लगे। औरंगजेब मर चुका था। अत: अब किसी प्रकार की चिन्ता दिल्ली की ओर से नहीं थी।

कुछ कालोपरान्त अजीतसिंह दुर्गादास से अप्रसन्न रहने लगा तो वे जोधपुर छोड़कर उदयपुर चले गए। उदयपुर में उस समय राजसिंह जी शासक थे। उन्होंने बड़े आदर भाव से इनको रखा। कुछ समय बाद दुर्गादास एकान्तवास के लिए उज्जैन चले गए। वहाँ महाकालेश्वर का पूजन करते रहे। सम्वत् 1775 वि. में वीर दुर्गादास का स्वर्गवास हो गया।

दुर्गादास अपने जीवनकाल में सदा ही आजादी के लिये लड़ते रहे। वे स्वतंत्रता और देश रक्षा का पाठ पढ़ाने

(शेष पृष्ठ 22 पर)

वाणी की शक्ति

– आचार्य महाप्रज्ञ

सृष्टिका विस्तार वाक् से होता है, वाणी से होता है। यदि वाणी नहीं होती तो एक आदमी किसी दूसरे आदमी के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता। कोई माध्यम ही नहीं बनता। न स्मृति होती, न कल्पना होती और न चिन्तन होता। ज्ञान के तीन पहलू हैं- स्मृति, कल्पना और चिन्तन। ये तीनों वाणी के आश्रित हैं। मन और वाणी को अलग करना, समझ में नहीं आता? क्या वास्तव में मन और वाणी को अलग करना, समझ में नहीं आता। क्या वास्तव में मन और वाणी दो हैं? जैन आचार्यों ने इस प्रश्न पर बहुत गहराई से विचार किया है। उन्होंने कहा-एक स्थिति में मन और भाषा दो नहीं रहते, एक बन जाते हैं। आज के मनोवैज्ञानिक भी इसी भाषा में सोचते हैं कि मन और भाषा को सर्वथा पृथक् नहीं किया जा सकता : मन का काम है-स्मृति करना, कल्पना करना, चिन्तन करना, मनन करना। क्या कोई ऐसी स्मृति है जिसमें भाषा का साथ न हो? क्या कोई ऐसी कल्पना होती है, जिसमें भाषा और शब्द न हों? क्या कोई ऐसा चिन्तन होता है जिसमें भाषा या शब्द का उपयोग न हो? भाषा से गुप्त कोई स्मृति नहीं हो सकती। भाषा से गुप्त कोई कल्पना नहीं हो सकती। भाषा से गुप्त कोई चिन्तन नहीं हो सकता। स्मृति, कल्पना और चिन्तन-तीनों के लिये शब्द चाहिए। बिना शब्द के वे लंगड़े हैं, चल ही नहीं सकते। तो फिर मन और वाणी या भाषा या शब्द को अलग करने की सीमा कहाँ है? मुझे लगता है कि यह बात हमें सीमा का बोध करायेगी कि भाषा को मूक मन कहा जा सकता है और मन को मुखर भाषा कहा जा सकता है। जब वह मन मुखर होता है, बोलने लगता है, तब मन का नाम भाषा हो जाता है और भाषा जब मूक बनती है, तब उसका नाम मन हो जाता है। कितना ही बड़ा ज्ञानी हो, अतीन्द्रियद्रष्टा हो, यदि उसके पास भाषा नहीं है तो वह दुनिया के काम का नहीं होता। केवल ज्ञानी और अवधिज्ञानी भी भाषा के अभाव में अनुपयोगी बन जाते हैं। केवल ज्ञानी भी मूक हो सकता है। वह जानता सब कुछ है पर बता नहीं सकता। वह दुनिया के लिये अनुपयोगी होता है। मुनि के लिये एक विशेषण है-'तिन्नाणं तारयाणं'- मुनि स्वयं तरता है और दूसरों को तारता है। वह स्वयं अपनी समस्याओं का पार पाता है और दूसरों को भी समस्याओं से पार पहुँचाता है। यह सब भाषा के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है। भाषा के बिना ऐसा नहीं हो सकता। भाषा के अभाव में वह स्वयं तैर सकता है, दूसरों को नहीं तैरा सकता। 'तिन्नाणं तारयाणं' वाली बात भाषा के आधा पर ही सफल होती है।

जब तक मन की बात मन में रहती है तब तक वह व्यक्तिगत बात बनी रहती है। पर जब मन की बात भाषा में उतर आती है तब वह सामाजिक बन जाती है, वैयक्तिक नहीं रहती। व्यक्ति और समाज की यही सीमा है। जब आचरण मन की सीमा तक होता है, वह वैयक्तिक होता है। वह व्यक्तिगत सीमा है। मन से बाहर जब आचरण और व्यवहार होता है, वहाँ व्यक्ति की सीमा समाप्त हो जाती है। वही समाज का आदि बिन्दु बन जाता है। समाज का आरम्भ वचन से होता है। वचन की बात शरीर पर चली जाती है तो इसका और अधिक विस्तार हो जाता है। वाणी एक ऐसी शक्ति है जो एक ओर मन का प्रतिनिधित्व करती है तो दूसरी ओर शरीर को उछालती है। आदमी किसी से लड़ता है तो वाणी के द्वारा लड़ता है। आदमी किसी से प्रेम करता है तो वाणी के द्वारा करता है। आदमी किसी को अपना बनाता है तो वाणी के द्वारा ही बनाता है। आदमी किसी को विरोधी बनाता है तो वाणी के द्वारा ही बनाता है। वाणी की बहुत बड़ी शक्ति है। मुँह से एक बात निकलती है और सामने वाले व्यक्ति को जो चाहे सो बना देती है।

भाषा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा अपनी भी भलाई हो सकती है और दूसरे की भी भलाई हो सकती है। भाषा में भलाई निष्पादन करने की शक्ति है तो उसमें बुराई करने की शक्ति भी है। दोनों ओर वह समान-रूप से चलती है। भाषा में जो क्षमता है, भाषा के द्वारा जो संपादित होता है वह न मन के द्वारा होता है और न शरीर के द्वारा होता है। इसलिए भाषा का मूल्य सबसे अधिक है।

इस दुनिया में वाणी के द्वारा क्या-क्या नहीं होता। सारा इतिहास वाणी पर आधारित है। सारा ज्ञान वाणी में निबद्ध होकर पुस्तकों में प्राप्त है। जो कुछ मिलता है, वह सारा वाणी के द्वारा मिलता है।

वाणी के साथ तीन शक्तियाँ काम करती हैं।

* एक है वाणी की अपनी शक्ति।
* एक है भावना की शक्ति।
* एक है वाणी के द्वारा पैदा होने वाली तरंग की शक्ति।

ये तीनों शक्तियाँ हैं। सबके पृष्ठभूमि में रहती है भावना की शक्ति। वाणी के साथ भावना का बहुत बड़ा संबंध है। जिस भावना से जो वाणी निकलती है वैसा ही कार्य होने लग जाता है और वैसी ही तरंग पैदा होने लग जाती है। भावना के बिना वाणी को समझा ही नहीं जा सकता। आदमी अपनी भावना से बात को पकड़ता है और कहने वाले की भावना से भी बात समझ में आ जाती है। भावना है सूक्ष्म वाणी। भावना सबसे अधिक काम करती है। जितने मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं, सब भावनात्मक वाणी के द्वारा होते हैं। भावना शब्दों के माध्यम से आती है। भावना शब्दातीत नहीं होती। मन में उसका एक आकार बनता है। वह शब्द का ही आकार होता है।

भावना की शक्ति प्रसरणशील होती है। भावना हमारी सूक्ष्म भाषा है। यह सूक्ष्म वाणी है। एक व्यक्ति के मन में जो भाव या भाषा बनती है, सामने वाले व्यक्ति के मन में उसकी प्रतिक्रिया भाषा में बन जाती है। यह ऐसा जाना-पहचाना मनोवैज्ञानिक सत्य है जिसे कोई उलट नहीं सकता। वह अन्यथा नहीं हो सकता। एक व्यक्ति किसी के बारे में अच्छे विचार करता है, अच्छी भावना करता है, सामने वाले के मन में अपने आप अच्छे विचार आ जाते हैं, अच्छी भावना आ जाती है। बुरा विचार करता है, तो सामने वाले के मन में उसके प्रति अप्रियता की भावना जाने-अनजाने पैदा हो जाती है।

वाणी की एक शक्ति है भावना और दूसरी शक्ति है उच्चारण। उच्चारण के आधार पर ही समूचे मंत्र-शास्त्र का विकास हुआ है। भावना और उच्चारण के आधार पर ही मंत्र-शक्ति का विकास होता है। तरंग का सिद्धान्त भी इसके साथ जुड़ता है। आज वाणी पर आधुनिक खोजें हुई हैं, मंत्रशास्त्रीय खोजें हुई हैं। इन खोजों में तीनों शक्तियों की बात निर्णीत हुई है। तीनों बातें जुड़ी हुई मिलती है। पहली बात है भावना। दूसरी बात है उच्चारण और तीसरी बात है उच्चारण के द्वारा उत्पन्न वाणी की शक्ति। उच्चारण के साथ-साथ तरंग पैदा होती है। एक शब्द का उच्चारण होता है और अल्फा-तरंगें पैदा हो जाती हैं। एक शब्द का उच्चारण होता है और थेटा-तरंगें पैदा हो जाती हैं, बीटा तरंगें पैदा हो जाती हैं। इन तरंगों के आधार पर मंत्रों की कसौटी की जाती है। 'ओम्' का उच्चारण होता है, अल्फा-तरंगें पैदा होती हैं और मस्तिष्क रिलैक्स हो जाता है, शिथिल हो जाता है। जैसे-जैसे मस्तिष्क की शिथिलता बढ़ती है, अल्फा-तरंगें पैदा होती चली जाती हैं। शिथिलन के लिये यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जितने भी बीज-मंत्र हैं उनमें भिन्न-भिन्न तरंगें उत्पन्न होती हैं और ये मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं। बीजाक्षर हैं-अ, सि, आ, उ, सा, अर्हं, ओम्,ह्रीं, श्रीं, क्लीं। ये सारे बीजमंत्र हैं। इनसे उत्पन्न तरंगें ग्रन्थि-संस्थान को प्रभावित करती हैं, अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित करती हैं। ग्रन्थियों का स्राव 'हं' के उच्चारण से संतुलित हो जाता है।

प्रश्न है, वाणी की शक्ति का विकास कैसे हो? जब तक वाणी की अशुद्धि नहीं मिटती, उसके मल-दोष समाप्त नहीं होते, तब तक वाणी की शुद्धि नहीं हो सकती। उसकी अशुद्धि को मिटाने का एक उपाय है-

'प्रलम्बनादाभ्यासाद् वाक्यशुद्धि'- प्रलंब नाद के अभ्यास के वाक्यशुद्धि होती है। ध्वनि प्रलंब है। मन के साथ भावना के साथ संबंध स्थापित करने के लिये प्रलंबनाद का अभ्यास महत्त्वपूर्ण होता है। यह उच्चारण का एक प्रकार है। उच्चारण अनेक प्रकार के होते हैं- उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि। मंत्रशास्त्र में ह्रस्वोच्चारण का एक प्रकार का लाभ होता है, दीर्घोच्चारण का दूसरे प्रकार का लाभ होता है और प्लुत उच्चारण का भिन्न प्रकार का लाभ होता है। उच्चारण जितना लम्बा होता है, ऊर्जा उसी के अनुपात से निर्मित होती है और मन के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित होता है। अर्हं और ओम् का लम्बा उच्चारण होता है। सामवेद में अनेक प्रकार की उच्चारण-पद्धतियों का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है। उच्चारण के आधार पर एक-एक मंत्र की हजार-हजार शाखाएँ हो जाती हैं।

वाणी और शब्दों का संयोजन और उच्चारण हमारी भावना को प्रभावित करता है। शब्दों की शक्ति, भावना की शक्ति और उच्चारण की शक्ति-इन तीनों को समझना बहुत आवश्यक है। यही वाणी-शुद्धि की प्रक्रिया है। प्रलम्ब नाद इसी का एक संकेत है।

वाक् शुद्धि का दूसरा उपाय है-सत्य का आलंबन। उच्चारण का विवेक कर लिया, तरंगों को भी समझ लिया, किन्तु उसके पीछे भावना का जो बल है वह यदि असत् है, असत्य है तो सब कुछ बिगड़ जाएगा। यदि हम आज की समस्याओं का विश्लेषण करें तो प्रतीत होगा कि उनके मूल में असत्य का बहुत बड़ा हाथ है। इसलिए सारी समस्याएँ जटिल होती जा रही हैं। वचनसिद्धि का सबसे बड़ा साधन है-सत्य। जो सत्यवादी होता है उसके कथन को कोई बदल नहीं सकता। उसके कथन को कोई अन्यथा नहीं कर सकता। उसकी वाणी की तरंगों में, परमाणुओं में इतनी शक्ति आ जाती है कि प्राकृतिक घटना को वैसे ही घटना पड़ता है। एक व्यक्ति में सत्य का, ब्रह्मचर्य का इतना बल होता है कि प्रकृति भी उससे प्रभावित होती है- बादल होते हैं तो बिखर जाते हैं और नहीं हों तो बन जाते हैं। ऋषिराय साधक थे। वे जब भी पदविहार करते, आकाश में बादल मंडराने लग जाते। आतप मंद हो जाता। यह होता है। और भी न जाने क्या-क्या घटित हो जाता है। सत्य की शक्ति असीम है।

जिन व्यक्तियों ने सत्य की निष्ठा बनाए रखी, वे विलम्ब से भले ही हो, आगे बढ़े हैं। यदि सत्य के प्रति अटूट निष्ठा होती है तो उसका अच्छा परिणाम अवश्य आता है। प्रश्न है मूल निष्ठा का। वह बनती ही नहीं, बनने से पहले ही मर जाती है। यदि वास्तव में सत्य का प्रयोग हो तो वाणी में भी अपार शक्ति आ जाती है। इससे वचनसिद्धि होती है।

*

पृष्ठ 19 का शेष

कुल रक्षक दुर्गादास

आए थे। जनता में देश प्रेम की लहर उन्होंने दौड़ाई। वे सच्चे शुद्ध, परसेवी, त्यागी, दूरदर्शी और अपने समय के तगड़े वीर थे। उनका जयगान आज सारा भारत करता है। प्रताप और शिवाजी की भाँति उनके हृदय में भी मातृभूमि की आजादी के लिये एक टीस थी, एक जलन थी और एक अटूट लगन थी। अन्त तक उसे वे पूरी करके ही रहे। वे चाणक्य की भाँति राज्य एवं राजा के निर्माता थे। स्वयं ने कभी राज लोभ नहीं रखा। भाव बदलते ही जोधपुर छोड़कर चले गए। जीवन भर स्वतंत्रता के लिये जूझने वाले ऐसे वीरों को कोटि कोटि धन्य है। उन्हीं के जीवन से प्रेरणा लेकर आज का भारत गौरवशाली है, वीरों का देश है, और स्वतंत्रता प्रेमी है।

देह एक रथ है, इन्द्रियाँ उसके घोड़े, बुद्धि, सारथी और मन लगाम है।
केवल देह पोषण करना आत्मघात करना है। - **ज्ञानेश्वरी**

विचार-सरिता

(षट् पञ्चाशत् लहरी)

– विचारक

हम सभी साधक ज्ञान-पिपासु तो हैं। परमात्मा से साक्षात्कार करना भी चाहते हैं पर परमात्मा से एकत्व होने की कला नहीं जानते। यदि कोई ब्रह्म साक्षात्कार किया हुआ महापुरुष हम पर कृपा कर दे और उनके द्वारा बतायी गई युक्ति का अक्षरशः पालन करें तो कोई मुश्किल नहीं, कि हमें उस चेतन तत्त्व की अनुभूति न हो। इसमें सबसे बड़ी बाधा जो है वह यह है कि हम देह को ही अपना स्वरूप मान रहे हैं और इस शरीर सहित अपने आपको परमात्मा से मिलने का प्रयास करते हैं।

यह शरीर तो जड़ तत्त्व है। यह तो परमात्मा से मिलन मनाने के लिये एक साधन मात्र है या यों समझो कि वह वाहन मात्र है। आप जब कभी किसी राजा, मंत्री या उच्च अधिकारी से मिलने को जाते हो तो उसके कार्यालय या निवास में वाहन सहित प्रवेश करते हो या वाहन का परित्याग करके स्वयं मिलते हो? सीधी सरल गणित है कि लोक व्यवहार में भी जब हम किसी उच्च अधिकारी से मिलते हैं तो वाहन का परित्याग करके केवल स्वयं ही मिलते हैं तब मिलना संभव होता है। यदि हम वाहन का परित्याग नहीं करेंगे तो कोई भी ऐसा अधिकारी नहीं है जिसके यहाँ आने वाले अपने वाहन सहित प्रवेश पाते हैं। ऐसे ही यदि हमें परमात्मा से मिलन मनाना है तो जड़ तत्त्व का परित्याग करके अपने आत्म तत्त्व को परमात्म तत्त्व से मिलाइये। तब आप स्वयं परमात्म रूप बन जाओगे।

हम जब कभी सत्संग में जाते हैं तो वहाँ भी हम इस देह को श्रोता बनाकर बैठते हैं। यह देह तो मोह और ममता में रचा पचा है। राग और द्वेष से ओतप्रोत है। इसलिए सत्संग का जो वास्तविक रस है उससे हम वंचित रह जाते हैं। यदि हम अपनी आत्मा को श्रोता बना लें। आत्मा को द्रष्टा बना लें तो परमात्मा के रस की अनुभूति में विलम्ब नहीं होगा। तत्काल फल की प्राप्ति हो जावेगी।

संसार के भोग पदार्थों में जो हमारी वृत्ति सुख मान रही है यही हमारी मुक्ति में बाधक है। जिसने देह को अपना स्वरूप माना है, वह संसार व संसार के भोग पदार्थों में वासनाग्रस्त होकर उसमें रुचि रखता है। कभी-कभी शास्त्रों व सन्तों के वचनों को सुनकर उसकी मोक्ष प्राप्ति की वासना जाग उठती है जिससे वह भी तोते द्वारा रटी रटाई बात को ज्ञानियों की भाँति कहने लगता है कि संसार माया है, भ्रम है, असत्य है, संसार मात्र बुद्धि का विलास है। यह रस्सी में सर्प की भ्रान्ति व नींद में स्वप्न की भाँति है। संसार तो मरु मरिचिका है आदि बातों को सुना-सुनाकर अपने को ज्ञानी होने का अहंकार पालता है।

वह केवल किताबी बातों की जानकारी मात्र से अपने को ज्ञानी मान रहा है किन्तु उसने ऐसा जाना नहीं जैसा ज्ञानी ने जाना है। इसलिए उसका संसार को इन्कार करना भी झूठ है, पाखण्ड है, वासनामात्र ही है क्योंकि मोक्ष की वासनापूर्ति हेतु वह इसे इन्कार कर रहा है। संसार से भाग रहा है, हिमालय की कन्दराओं में जा रहा है। पर संसार तो वहाँ भी है। क्योंकि संसार बाहर नहीं, हमारे चित्त पर अंकित है। जब तक चित्त की कैसेट को साफ नहीं करेंगे तब तक हम चाहे जग में रहें या जंगल में इससे कोई अन्तर नहीं आ सकता। ज्ञानी और अज्ञानी में यही तो अन्तर है कि ज्ञानी संसार में तो रहता है किन्तु संसार उसके भीतर नहीं है। अज्ञानी के भीतर भी संसार है और बाहर भी संसार है इसलिए उसे संसारी कहा गया है।

नाव समुद्र के अथाह जल राशि पर तभी तक तैरकर पार होने में सक्षम है जब तक उसके भीतर पानी न आ जाए। नाव के भीतर पानी आ गया तो नाव पार नहीं हो सकेगी अवश्य ही सागर में डूब जायेगी। ऐसे ही जिसके भीतर में संसार नहीं है वह संसार में रहते हुए भी मुक्त है तथा जिसके भीतर संसार रच गया है वह संसार से कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। ज्ञानी संसार के पदार्थों का उपभोग करते हुए भी उसमें रस नहीं ले रहा है। वह वासना रहित हो चुका है। इसलिए वह इस संसार को देखते हुए भी नहीं देख रहा है। वह तो नित्य आत्मा को ही सर्वत्र देखता है, संसार को नहीं।

(शेष पृष्ठ 28 पर)

हमारे समाज का भविष्य युवाओं के हाथों में

– भँवरसिंह रेड़ी

आज के बच्चे कल के नागरिक हैं। जिस समाज में जिस प्रकार के नागरिक होंगे उस समाज का स्वरूप भी तद्नुरूप ही होगा। हमारे समाज में आज के किशोर वय के बालक जिस डगर पर चल रहे हैं वे भविष्य में उसी डगर की दिशा तय कर पायेंगे।

बच्चों का जीवन कुम्हार के चाक पर रखी मिट्टी की भाँति होता है। जिस प्रकार कुम्हार चाक पर रखी मिट्टी को घड़ा, सुराही, मटकी, कुलहड़ी, माट या किसी भी प्रकार के बर्तन का आकार दे सकता है, उसी प्रकार बालक के जीवन को किसी भी प्रकार का मोड़ दिया जा सकता है।

वर्तमान में हमारे समाज के बालकों को जिस प्रकार का वातावरण, जिस प्रकार की संगति व साहित्य मिल रहा है वह कल को उसी प्रकार का नागरिक बनेगा। और जिस समाज में जिस प्रकार के नागरिक होंगे वह समाज उसी प्रकार का होगा।

हमारे समाज का प्राचीन इतिहास इसलिए गौरवपूर्ण है कि उस काल में बच्चे को जन्मते ही माता पालने में झुलाते समय भी यही शिक्षा देती थी कि अपनी मातृभूमि दुश्मन को मत दे देना बल्कि मातृभूमि के लिये मरने में ही बड़प्पन होगा। (पूत सिखावे पालने हालरिये हुलराय इला न देणी आपणी मरण बड़ाई माँय) या माताओं को ऐसे सुपुत्र जन्मने को कहा जाता था– **जननी जणे तो ऐसा जणे के दाता के सूर। नहीं तो रहिये बॉझड़ी मती गँवाये नूर।।** अर्थात् दानवीर या शूरवीर के अतिरिक्त तो बाँझ रहना ही उत्तम बताया है।

आज की परिस्थितियों में हमारे समाज में सकारात्मक व नकारात्मक (पोजिटिव व नेगेटिव) विचार-धारा के बालक देखने व सुनने को मिलते हैं।

पहले प्रकार की विचारधारा के बालक संघशक्ति पत्रिका का बड़ी बेसब्री से इन्तजार करते रहते हैं और इसकी प्रति प्राप्त होते ही एक साथ उसको पढने से पहले विराम नहीं लेते। उसमें अंकित तिथियों के शिविरों का समय व स्थान सुनिश्चित करते हैं तथा उसमें हर सूरत में पहुँचने की तैयारी में लग जाते हैं तथा अपने अभिभावकों से इसकी अनुमति लेते हैं।

इस प्रकार के बालक पाश्चात्य संस्कृति से पूर्णतया परहेज रखते हुए बोलचाल की भाषा में अपनी परम्परागत भाषा बाबोसा, दादोसा माँ सा, काकीसा, मामोसा का बेहिचक प्रयोग करते हैं। ये जीन्स की पेट पहिनना या हिप्पी कट बाल सँवारना या नाखून बढाना जैसी फैशन परस्ती से बिल्कुल अलग रहते हैं। इस विचारधारा के बालक मृदुभाषी, मित्तभाषी, मित्तव्ययी, विनम्र, अनुशासन प्रिय तथा समाज के प्रति समर्पित होते हैं। ऐसे बालक बस में या गाड़ी में किसी भी महिला, वृद्ध, अपाहिज या रोगी को स्वयं खड़े होकर उन्हें अपनी सीट देने या उतरते चढते समय उनको प्राथमिकता देने में गर्व महसूस करते हैं। ये बालक अपने से बड़ों का पर्याप्त सम्मान करना व अपने से छोटों से पर्याप्त स्नेह करना अपना कर्तव्य समझते हैं। इनको अपनी जाति, अपने समाज व राष्ट्र की चिन्ता रहती है तथा अपना लक्ष्य प्राप्ति में ही अपना हित समझते हैं।

ये निज स्वार्थ की जगह 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' तथा अयं निजं परो चेति की बजाए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में विश्वास रखते हुए अपनी जाति व अपने समाज के प्रति समर्पित होकर अपनी एक अलग पहिचान बनाने में सफल होते हैं। ऐसे बालक आगे जाकर समाज के सम्भ्रांत नागरिक कहलाते हैं तथा एक आदर्श समाज का सृजन करते हैं।

ऐसे बालक राष्ट्र की धारा में बहना सीखकर समाज के आदर्श नागरिक बनते हैं। राजकीय व समाज की सेवाओं में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करते हैं। चाहे कितने ही ऊँचे पदों की प्राप्ति हो जाए इनको अहंकार छू भी नहीं सकता। सादा जीवन व उच्च विचार इनके जीवन की साख होती है। व्यसन इनके जीवन में कभी फटकने भी नहीं

पाता है। हमारे समाज की नैया के खेवट ऐसे बालक ही भविष्य में अच्छे नागरिक बनकर होते हैं। ऐसे नागरिक अपने परिवार, समाज व राष्ट्र का नाम रोशन करते हैं।

स्वर्गीय तनसिंहजी ने क्षत्रिय युवक संघ नामक कार्यशाला की स्थापना की थी जिसका वर्तमान में सफल संचालन श्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर कर रहे हैं, इस कार्यशाला में ही भावी नागरिकों का शुद्धिकरण होता है। जिस प्रकार हीरा भूमि में से एक पत्थर के रूप में प्राप्त होता है लेकिन बाद में उसको तराश कर चमकाया जाता है उसी प्रकार इस कार्यशाला में आदर्श नागरिकों का निर्माण किया जाता है।

दूसरी प्रकार के बालक (नकारात्मक सोच वाले) ठीक उपरोक्त के विपरीत होते हैं। इनको संघशक्ति, पथ-प्रेरक या अन्य सद् साहित्य की बजाय गन्दे उपन्यास या पत्रिकाओं को पढने में रुचि बनी रहती है।

अनुशासन का इनके लिये कोई अर्थ नहीं होता है। हमारे क्ष.यु.संघ के शिविरों की बजाए नाइट क्लबों में जाना या सिनेमा घरों में जाना गर्व की बात समझते हैं। जीन्स की पेंट पहिनना, नई-नई स्टाइल के बाल सँवारना, अधकचरी विदेशी भाषा बोलना इनकी पहिचान होती है। मारपीट, झगड़ा-फसाद आदि विभिन्न प्रकार के अपराधों में इनका नाम सबसे पहले आता है। परिवार, समाज व राष्ट्र के लिये ऐसे बालक भविष्य में आकर सिर दर्द बनते हैं।

उपरोक्त इन दोनों प्रकार के नागरिकों के निर्माण में हमारी भी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष भूमिका होती है। हम हमारी जिम्मेवारियों से बच नहीं सकते। इसके लिये निम्न बिन्दु हमारी जिम्मेवारी दर्शाते हैं।

1. सदैव स्मरण रखें ये ही हमारे उत्तराधिकारी होंगे। परिवर्तन संसार का नियम है। हम हमारे पूर्वजों के उत्तराधिकारी हैं इसी प्रकार ये बालक भी हमारे उत्तराधिकारी बनेंगे। अत: हमें ही इनको ऐसे जीवन रूपी सांचे में ढालना चाहिए कि ये भविष्य में हमारा कार्य भार सम्भालें तब इनकी ओर किसी भी क्षेत्र में अँगुली नहीं उठ सके।
2. पहले हमें उनके लिये आदर्श बनना होगा। हम दूसरों से जो अपेक्षा रखते हैं वैसा पहले हमें स्वयं बनकर रहना होगा। हम यदि यह अपेक्षा करें कि हमारी संतान भविष्य में एक आदर्श नागरिक बने तो पहले हमें एक आदर्श नागरिक बनकर दिखाना होगा। हम रोज 7-8 बजे विलम्ब से उठें, हम बीड़ी, सिगरेट, माँस, मद्य का शौक करते रहें और आशा यह करें कि हमारी सन्तान रोज प्रात: 4 बजे उठे व सात्विक खान-पान करे तो यह कैसे सम्भव हो सकेगा। हम अपने माता-पिता या अन्य बड़ों-छोटों का यथायोग्य आदर सत्कार सेवा सुश्रुशा नहीं करें तो हमारी सेवा चाकरी हमारी सन्तान करना किससे सीखेगी।
3. बालक को अश्लील साहित्य व टी.वी. से सदैव बचायें :- बालक जैसा देखता या सुनता है वैसा ही बनने का प्रयास करता है। हमें अपनी किशोर व युवाओं की प्रत्येक गतिविधि पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए। वे अपने कक्षा की पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अतिरिक्त किस प्रकार का साहित्य पढते हैं या टी.वी. में क्या देखने में रुचि रखते हैं इसे गम्भीरता से लेना चाहिए। क्योंकि कोई भी बुरा या अच्छा कार्य बालक सीखता है तो अच्छी बुरी संगत से ही सीखता है। अत: अच्छा साहित्य उपलब्ध करवाना व टी.वी. पर अच्छे कार्यक्रम दिखाना व बुरे साहित्य व टी.वी. पर अशोभनीय कार्यक्रम देखने से बचाकर रखना हमारी जिम्मेवारी है।
4. बालक की दैनिक गतिविधि पर ध्यान देना। बहुत से अभिभावक अपने धन्धे में लगे रहते हैं उनका अपने बच्चों के क्रियाकलापों से कोई लेना-देना नहीं होता है। बच्चे कब उठते हैं? कब पढ़ते हैं? क्या पढ़ते हैं? कैसा पढ़ते हैं? कब खाते हैं? कैसा खाते-पीते हैं? किस किसकी संगत में रहते हैं? कहाँ-कहाँ जाते हैं? उनके पास कौन-कौन किस-किस प्रकार के बच्चे आते हैं? इन सब बातों का संपूर्ण ध्यान रखना हमारी जिम्मेवारी होती है।
5. क्षत्रिय युवक संघ शिविरों में भेजना- अपने परिवार के बालक को प्रतिवर्ष 1-2 शिविरों में भेजते रहें तो

फिर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं रहती क्योंकि साल में मध्यावधि अवकाश व ग्रीष्मवकाश दोनों प्रकार के अवकाशों में शिविर निश्चित रूप से लगते हैं, उनमें बच्चों को नियमित भेजते रहें तो जो अपेक्षाएँ हम भावी नागरिक से करते हैं वे सब अपने आप पूर्ण हो सकेगी।

6. उत्सवों, त्योहारों पर ध्यान रखें- बालक, किशोर या युवा कैसी भी अवस्था हो संगति से बिगड़ते या सुधरते हैं। ऐसे खुशी के अवसरों पर नाच-गान, डाँस व भाँग, बियर, शराब आदि विभिन्न प्रकार के नशों का प्रयोग किया जाता है जिसमें नयों को सीखने का शौक होता है। इस प्रकार के समारोहों में भेजे ही न जाए, यदि भेजना आवश्यक हो तो उसकी अभिरक्षा के लिये ऐसा संरक्षक तैनात हो जो ऐसी कुटेवों से उनको वंचित रख सके।

7. बुर्जुगों के पास बैठने व हमारे समाज की गौरवपूर्ण पौराणिक गाथाएँ सुनने-सुनाने की आदत डालनी चाहिए। बहुत से युवक अपने दादोसा से आगे कुछ नहीं जानते। अपने ननिहाल या पिताजी के ननिहाल के क्षत्रियों की खाँप या गौत्र तक नहीं जानते। हमारे समाज के वीरों, देश भक्तों, कवियों, सन्तों व लेखकों का जीवन परिचय का सरकार ने पाठ्यक्रमों में कोई स्थान नहीं रखा है अब उनकी जानकारी या तो उनसे सम्बन्धित साहित्य अपने-अपने घरों में उपलब्ध करवाया जाए या फिर वृद्धों, बुजुर्गों या अनुभवशील लोगों से सुनकर ज्ञान अर्जन कर सकते हैं। हमारे समाज में ही उपर्युक्त प्रकार के महापुरुष सर्वाधिक संख्या में हुए हैं अर्थात् प्राचीन इतिहास में हमारी जाति के इतिहास को निकाल दिया जाए तो शेष कुछ भी नहीं बचेगा। समय-समय पर हमारी जाति के वीरों, लेखकों व कवियों ने अनुपम उदाहरण पेश करके आदर्श प्रस्तुत किये हैं। अकबर व महाराणा प्रताप के संघर्ष में चाटुकारों ने प्रताप के समर्पित होने का झूठा पत्र अकबर को दिखाया। अकबर ने कवि पृथ्वीराज राठौड़ को कहा कि जिसकी आप प्रशंसा करते हैं, उसने तो समर्पण का पत्र दिया है। पृथ्वीराज जी ने प्रताप को पूछा-'पटकूं मूंछां पाण के पटकूं निज तन करद। दीजै लिख दीवाण, इण दो महली बात इक।' प्रताप का उत्तर था-'तुरक कहासी मुख पतो, इण तन सूं इकलिंग। ऊगै जो ही ऊगसी प्राची बीच पतंग। खुशी हूत पीथल कमध, पटको मूंछां पाण। पछटण है जे तो पतो कलमा सिर केवाण।' महाराणा प्रतापने समाज का मान बढाया तो पृथ्वीराज का आकलन भी सत्य था।

उपसंहार :- अच्छे नागरिक बनाने में हमारी बहुत बड़ी जिम्मेवारी रहती है। प्राचीन इतिहास को उठाकर देखें तो माता-पिता के दिशा-निर्देशों से ही महान पुरुष हुए हैं। प्राचीन ही नहीं अभी गाँधीजी को कितना समय हुआ है वे उच्च अध्ययन के लिए विदेश जाने लगे तो उनकी माताजी ने माँस, मदिरा का सेवन न करने व परस्त्री गमन न करने की प्रतिज्ञा करवाने के बाद ही अनुमति दी थी।

अत: आज हमारे समाज को इसी बात का गर्व है कि हमारे समाज के बुजुर्गों ने समय-समय समाज व राष्ट्र का नाम रोशन किया है। हम यदि इस बात के महत्त्व को समझें, इस पर गम्भीरता से विचार करें तो हम उसी परम्परा को आगे भी बढा सकते हैं।

आज भी राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक व साहित्यिक क्षेत्रों में हमारे समाज की ऐसी ऐसी विभूतियाँ मौजूद हैं जिनका जिक्र आते ही हम गर्व महसूस कर रहे हैं। हमारे राष्ट्र की वे अमूल्य धरोहर बन चुके हैं। लेकिन उनको इतनी ऊँची-ऊँची मंजिलों तक पहुँचाने में उनके अभिभावकों की मुख्य भूमिका रही है। उनको वहाँ तक पहुँचाने में अनुकूल वातावरण दिया गया है, उनके जीवन के हर मोड़ पर फिसलने न देने का ध्यान रखा गया है। उनको वहाँ तक पहुँचाने के लिये आवश्यकतानुसार सहूलियतें प्रदान की गई हैं। अत: हमें अपनी संतति को सुयोग्य नागरिक तैयार करने के लिये अपनी क्षमता अनुसार प्रयास करने में किसी प्रकार की उदासीनता नहीं बरतनी चाहिए-फल देना ईश्वराधीन है।

*

माँ - अम्बा

(शक्तिपीठ-अम्बाजी)

- हमीरसिंह परमार

क्षत्रिय आद्यशक्ति का उपासक है। जगत का मंगल करने वाला आद्य शक्तिरूप परमात्म तत्व शिव-शक्ति ही है। इसी आद्य शक्तिरूप परमात्मतत्त्व ने अपने भीतर से महामाया को प्रकट किया है। यही महामाया खुद भगवती जगद-अम्बा स्वरूप धारण करके समग्र संसार की माता बनी हुयी है। समग्र सृष्टि को इनका वचन है कि-जगत में अधर्मी असुर बढेंगे तभी अवतार लेकर असुरों का नाश करेंगी। ऐसी माँ अम्बा-भवानी विविध स्वरूप से प्रकट हुई है। जो विविध नाम से पहचानी जाती है। जैसे दुर्गा, महिषासुर मर्दिनी, महाकाली, चामुंडा, कात्यायनी, शैलपुत्री इत्यादि।

आरासुर पर्वत माँ-अम्बा का आद्य स्थान है। जो उत्तर गुजरात के उत्तर पूर्व में है।

भगवान शिव ने दक्ष प्रजापति की पुत्री उमा के साथ विवाह किया था। किसी एक समय दक्ष प्रजापति के यहाँ यज्ञ प्रारम्भ होने का समाचार प्राप्त होने पर उमा को पिताजी के यहाँ जाने की इच्छा हुई। उन्होंने पति से आज्ञा चाही। तभी शिव ने उमा को कहा-बिना निमंत्रण जाना अच्छा नहीं है। फिर भी उमा मायके पहुँची। धूमधाम से चल रहे यज्ञ में उमा को पधारी देख इनकी माँ खुश हुई लेकिन पिता दक्ष आग-बबूला हो उठे। उन्होंने गरजकर शिव के बारे में बहुत कटु वचन बोल दिये। पति की निंदा सुनकर उमा को क्रोध आया। अपमान सहन न होने से वह यज्ञकुंड में कूद गयी। उमा के साथ आये हुए गण ने कैलाश जाकर के शिव को सारी बात बताई। जिससे क्रोधित हुए शिव यज्ञ मण्डप में दौड़ आये। अपनी जटा फैलाकर यज्ञकुंड पर झटककर 'वीरभद्र' नामक भयंकर पुरुष पैदा किया। जिसने यज्ञ का मण्डप तहस-नहस कर दिया। शिव ने उमा का मृत शरीर यज्ञकुंड से उठाकर कंधे पर रखकर इधर-उधर दौड़ना शुरू किया। जिससे धरती काँपने लगी। पृथ्वी पर विनाश रोकने के लिये भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र द्वारा उमा के मृत शरीर के टुकड़े किये। शरीर के इक्यावन टुकड़े जहाँ धरती पर गिरे वहाँ 'शक्तिपीठ' बनी है। आरासुर अंबाजी में उमादेवी का हृदय गिरा हुआ माना जाता है, जिससे सभी शक्तिपीठों में माँ-अम्बा शक्तिपीठ का सबसे अधिक महत्त्व है।

माता-जगदअम्बा स्वरूप से सभी को सहाय कर रही है। सीता मैया को ढूँढ़ते समय राम-लक्ष्मण अर्बुद पर्वत की दक्षिण में आये हुए शृंगी ऋषि के आश्रम में पधारे थे, तब शृंगी ऋषि ने इन्हें जगदम्बा के पास आशीर्वाद के लिये भेजा था। इसी समय जगदम्बा ने इनको विजय के लिये 'जयबाण' दिया था।

कुंदनपुर के राजवी भीष्मक की पुत्री रुकमणि ने श्रीकृष्ण से ही शादी रचाने का संकल्प माँ अम्बा की सहाय से सिद्ध किया था।

माँ-अम्बा ने-मधु, कैटभ, महिषासुर, शुंभ-निशुंभ, चंड-मुंड, धुम्र-लोचन, रक्तबीज जैसे अनेक दानवों का संहार किया है, जिससे धर्म की जय-जयकार हुई है।

गब्बर पर्वत के निकट अंबिका वन में गाय चराने वाले चरवाहा के माँ से प्राप्त जौ-बीज-सुवर्ण में परिवर्तित हो गये, जिससे चरवाहा की पत्नी ने तपस्या की, और पुनः जन्म में गोकुल में नंद-यशोदा स्वरूप प्राप्त करने का वरदान माँ से प्राप्त किया।

मेवाड़ के दृढ प्रतिज्ञ महाराणा प्रताप भी माँ जगदम्बा की भक्त थी। महाराणी को मिलने ईडरगढ़ गये, तो माँ-जगदम्बा की सहाय से ही नदी को पार कर सके थे।

अणहिलपुर पाटण के राजा करण और राणी मीनलदेवी ने पुत्र प्राप्ति के लिये माता से प्रार्थना की थी। इनका पुत्र सिद्धराज भी जगदम्बा का भक्त था। इसने मालवा के राजवी यशोवर्मा पर जीत पाई, इसी के बाद माँ-अम्बा के स्थानक पर आकर यज्ञ किया था।

मंदसोर के व्यापारी अखेराज ने अपना जहाजी बेड़ा डूबने से बचाने के लिये माँ से प्रार्थना की और आधी संपत्ति मातृसेवा में भेजने का संकल्प लिया तभी चमत्कार हुआ, जहाजी बेड़ा डूबने से बच गया। मंदिर के पुजारी को

स्वप्न आया कि-माँ की मूर्ति के वस्त्र भीगे हैं। पुजारी ने मंदिर खोल के देखा-तो वस्त्र भीगे थे! और त्रिशूल टेढा हो गया था!! इस समय पुजारी कुछ समझ न पाया, इसने वस्त्र और त्रिशूल ठीक कर दिया। इसके बाद-इक्कीस दिन बीतने पर अखेराज अपनी आधी संपत्ति लेकर आया और जहाजी बेड़ा डूबने से माँ ने बचाया था, ये बात बताकर संपत्ति को माँ के चरणों में रखकर चला गया।

अखेराज द्वारा मातृ चरणों में प्रारम्भ की हुई 'अखंड ज्योत' आज भी मंदिर में प्रज्वलित है। उसके वंशज इसे प्रकाशित रख रहे हैं।

वीर विक्रम राजा की चालीसवीं पीढ़ी का वंशज रवपालजी परमार ने जगदम्बा की कृपा से सिंध में नगरठट्ठा में राज्य की स्थापना की थी। रवपालजी की बारहवीं पीढ़ी के वंशज दामाजी परमार ने 'सिंधवाई माता' के नाम से जगदम्बा का स्थानक बनवाया। माता की कृपा से इनके यहाँ जशराज नामक पराक्रमी पुत्र पैदा हुआ।

यवनों ने नगरठ्ठा पर आक्रमण किया। युद्ध में दामाजी मारे गये, युवान जशराज ने युद्ध में जीत पाई, फिर यवनों के त्रास के कारण इन्होंने आरासुर विस्तार में आकर राज्य स्थापित किया। माँ-जगदम्बा के मूल स्थान का विकास किया।

जहाँ पुराना मंदिर था वहीं पर अत्याधुनिक भव्य मन्दिर बनाया गया है। जिसको सुवर्ण से मंडित किया जा रहा है। यही मंदिर आकर्षण और श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। चित्तौड़गढ़ के महाराणा कुंभा द्वारा आरासुर में मंदिर के पास बसाया गाँव आज भी 'कुंभारिया' नाम से पहचाना जाता है। यहाँ पर चंद्रावती के दंडनायक विमल शाह ने जैन दहेरासर (मंदिर) बनवाये हैं, जो जग प्रसिद्ध है।

मातृशक्ति के प्रति श्रद्धा भक्ति दृढ़ करने के लिये और संस्कार विकास करने के लिये इसी परम पावन स्थानक 'अंबाजी' की यात्रा सभी क्षत्रियों को करनी चाहिए।

*

पृष्ठ 23 का शेष

विचार-सरिता

जिस प्रकार सोने से बने आभूषण में स्वर्णकार की दृष्टि स्वर्ण में है न कि आकृति में। वह आभूषण सिर का मुकुट है अथवा पैर का कड़ा है इससे उसकी कीमत नहीं आंकी जाती। कीमत तो उस स्वर्ण की मात्रा व शुद्धता पर निर्भर करती है। ऐसे ही चीनी से निर्मित खिलौने, चाहे वह हाथी है या घोड़ा, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। दुकानदार की दृष्टि में हाथी या घोड़े की कीमत नहीं है, उसकी दृष्टि में चीनी की मात्रा पर कीमत है। ठीक इसी प्रकार ज्ञान की दृष्टि में संसार के परिवर्तनशील पदार्थों का कोई मूल्य नहीं है। वह इस परिवर्तनशील व विनाशी संसार में भी उस तत्त्व को देख रहा है जो अपरिवर्तनशील व अविनाशी है। उसी सत स्वरूप आत्मा के आसरे यह माया की जो मिथ्या प्रतीति है वह समझ में आती है।

संपूर्ण संकल्पों के अन्त होने पर विश्रान्त हुए ज्ञानी के लिये कहाँ मोह और कहाँ संसार है। भारतीय परम्परा में महात्मा, संत, ज्ञानी, गुरु आदि शब्द उच्च बोध व श्रेष्ठता के सूचक है। सन्त तो वह है जिसके चित्त की समस्त वृत्तियाँ शान्त हो गई हैं एवं सभी प्रकार के संकल्पों का जिसके चित्त में कोई स्थान ही नहीं रहा है तथा केवल अपने चैतन्य स्वरूप में स्थिति पाई है और शान्त स्वरूप आत्मा में विश्रान्ति पाकर आनन्द के अनुभव से मन भर गया है। अब मन की समस्त चेष्टाएँ शान्त होकर मन की संज्ञा ही जिसकी न रही है वह ही महात्मा की श्रेणी में सच्चा सन्त है।

जिसके संकल्प शेष हैं, कुछ करने की वासना है, जिसमें स्वर्ण और मोक्ष की भी कामना है। जो अच्छे-बुरे में भेद करता है, जिसे जीव, ब्रह्म व सृष्टि में भिन्नता दिखाई देती है वह न ज्ञानी है न महात्मा है। सुख-दुख, हानि-लाभ, शुभ-अशुभ, राग-द्वेष के झूले में जो झूल रहा है वह ज्ञानी कैसे हो सकता है, उसे महात्मा कहना भी महात्मा शब्द का अपमान है। जो संकल्पों से रहित होकर आत्मज्ञान को उपलब्ध हो गया है वही महात्मा है। उसके लिये मोह, ममता, ज्ञान-अज्ञान, ध्यान-धारणा व मुक्ति का भी कोई स्थान नहीं है। जगत की समस्त चेष्टाएँ जिसकी शान्त हो चुकी हैं क्योंकि जब मन ही गलीभूत हो गया है अर्थात् जब मन ही नहीं रहा तो इनका अस्तित्व भी कैसे रह सकता है।

*

उपनिषद कथा

आत्मज्ञान का रहस्य

एक बार प्रजापति ब्रह्मा ने सभी सत्संगियों को आत्मा के विषय में उपदेश दिया। उन्होंने समझाया कि 'आत्मा' के मुख्यत: आठ गुण माने गए हैं। पहला गुण तो यह है कि आत्मा पापों से रहित है। दूसरा- आत्मा को कभी बुढ़ापा नहीं सताता। तीसरा- उसकी कभी मृत्यु नहीं होती। चौथा-वह शोक रहित है। पांचवां- उसे भूख नहीं लगती। छठा-उसे प्यास नहीं लगती। सातवां- आत्मा सत्यकाम है और आठवां यह कि वह सत्य संकल्प है। देव और असुर दोनों ही प्रजापति के इस सत्संग में आए थे। जब वे लौट कर अपने निवास पर गए तो उन्होंने समूह में बैठकर यह विचार-विमर्श किया कि हमें प्रजापति द्वारा बताए गए आत्मा के विषय में अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

ऐसा विचार कर देवताओं ने इन्द्र को और असुरों ने अपने राजा विरोचन को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर उन्हें प्रजापति के पास भेजा। ये दोनों परस्पर ईर्ष्या से भरे हुए, हाथों में समिधाएँ लेकर प्रजापति की सेवा में पहुँचे। प्रजापति ने उनके आने का उद्देश्य पूछा तो उन्होंने कहा- ''भगवन्! हमारा विचार है कि जो आत्मा पापरहित, मृत्युरहित, शोकरहित, क्षुधाहीन, तृष्णाहीन, सत्यकाम और सत्य संकल्प है, उसकी खोज करनी चाहिए और उसे विशेष रूप से जानने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि जो व्यक्ति उस आत्मा की खोज कर लेता है, उसे विशेष रूप से जान लेता है, वह संपूर्ण लोक एवं समस्त भोगों को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए हम आत्मा को जानने की इच्छा से आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। कृपा हमें आत्मज्ञान कराइए।''

इन्द्र और विरोचन की बात सुनकर ब्रह्मा जी बोले- ''यदि आप दोनों आत्मा के विषय में जानना चाहते हो तो पहले बत्तीस वर्ष तक मेरे पास रहकर मन, वचन और कर्म से विद्यार्थी बनकर तपस्या करें। तभी मैं तुम्हें आत्मज्ञान का उपदेश दूंगा।''

प्रजापति के कहने के अनुसार इंद्र और विरोचन ने बत्तीस वर्ष तक तपस्या की। अवधि पूरी होने पर वे प्रजापति की सेवा में उपस्थित हुए और उन्हें उपदेश देने को कहा।

उनकी बत्तीस वर्षों की तपस्या से प्रसन्न होकर प्रजापति बोले-''मैं आपकी तपस्या से प्रसन्न हूँ। अब मैं अपने वायदे के अनुसार उपदेश देता हूँ, सुनो-यह जो पुरुष नेत्रों से दिखाई देता है, आत्मा है, यह अमृत है, यह ब्रह्म है।''

यह सुनकर दोनों जिज्ञासुओं ने प्रश्न किया- ''भगवन्, यह जो जल में सब ओर दिखाई देता है और जो दर्पण में दिखाई देता है, उसमें आत्मा कौन-सी है?''

प्रजापति बोले-''मैंने नेत्रों के अंतर्गत जिसका वर्णन किया है, वही सब में प्रत्येक ओर दिखाई देता है।''

दोनों ने आश्चर्य से पूछा-''वह भला किस प्रकार?''

प्रजापति बोले-''आप दोनों जल से भरा एक-एक पात्र लें और उसमें अपने आपको देखकर जानने का प्रयत्न करें। उस पर भी जो आप न जान सको, वह मुझे बता दो।''

उन दोनों ने जल से भरा एक-एक पात्र लिया और अपने आपको उस जल में देखा। फिर बोले-''भगवन्, इस जल में तो हम अपने आपको ज्यों का त्यों संपूर्ण रूप से देख रहे हैं।''

प्रजापति ने पुन: कहा-''अच्छा अब आप भी पात्र की भाँति सुसज्जित होकर, सुंदर और अच्छे वस्त्रालंकार पहनकर, स्वच्छ और मोहक बनकर जल में अपने आपको देखें।''

उन दोनों ने वैसा ही किया। फिर प्रजापति ने पूछा- ''अब बताओ, आप क्या देखते हो?''

दोनों ने कहा-''भगवन्! हम जल में दो आकृतियाँ देख रहे हैं। जिस प्रकार हम दोनों ने उत्तम और सुंदर वस्त्रालंकार धारण कर रखे हैं, उसी प्रकार जल में दिखाई देने वाले प्रतिबिम्बों ने भी धारण कर रखे हैं।''

प्रजापति बोले-''यही आत्मा है। यह अमृत और अभय है। यही ब्रह्म है।

प्रजापति की बात सुनकर दोनों शांतचित होकर वहाँ से चल दिए। उन्हें जाते देखकर प्रजापति ने विचार किया–''ये दोनों आत्मा को प्राप्त किए बिना, उससे साक्षात्कार किए बिना चले जा रहे हैं। यह ठीक नहीं है। देवता हो या असुर, जो भी अधूरा ज्ञान प्राप्त करेगा, वह पराजित होगा, उसका विनाश निश्चित है।''

वहाँ से चलकर असुरों का प्रतिनिधि जब अपने साथियों के पास पहुँचा तो उसने अपने वर्ग के लोगों से कह दिया–''यह शरीर ही आत्मा है। इसे सुन्दर, आकर्षक तथा भव्य बनाना ही हमारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। इससे ही हमारा इंद्रलोक और परलोक सुधरेगा।''

वस्तुत: यह तो अधूरी शिक्षा थी। शरीर की सेवा और उसकी परिचर्चा तथा उसे सुन्दर बनाना एक सीमा तक ही उचित है, परन्तु असुरों की समझ तो उतनी ही थी। उन्होंने शरीर को ही सब कुछ मान लिया। किन्तु देवताओं के प्रतिनिधि इंद्र अधिक बुद्धिमान थे। उसने देव मंडली तक जाते-जाते सोचा–'यदि जल में दिखाई देने वाले प्रतिबिम्ब को ही हम आत्मा मान लें तो क्या केवल सुन्दर वस्त्र पहन लेने से ही आत्मा का सौंदर्य बढ़ जाता है? अथवा क्या किसी की एक आँख फूट जाने पर उसकी आत्मा को भी हम कानी कहेंगे? यह तो कोई बात न हुई। प्रजापति ने तो आत्मा को अजर, अमर, नित्य और पवित्र कहा था। फिर यह नष्ट और अपवित्र होने वाला शरीर आत्मा कैसे हो सकता है?'

इस प्रकार विचार करते हुए इंद्र पुन: प्रजापति के पास पहुँचे। इंद्र को अचानक फिर से आया देख प्रजापति ने पूछा–''इंद्र! आप और आपके साथी विरोचन तो यहाँ से पूर्ण संतुष्ट होकर चले गए थे। अब लौट कर क्यों आए हैं?''

इंद्र ने कहा–''भगवन्, मेरी जिज्ञासा शान्त नहीं हुई। मार्ग में मैंने भली प्रकार विचार किया, परन्तु समाधान नहीं हुआ। मैंने सोचा है कि जिस प्रकार यह छलात्मक शरीर अच्छी तरह सुसज्जित होने पर सजा-धजा दिखाई देता है, सुन्दर वस्त्रधारी होने पर सुंदर दिखाई देता है, और स्वच्छ होने पर स्वच्छ दिखाई देता है, उसी प्रकार इसके अंधा होने पर अंधा, जर्जर और खंडित होने पर जर्जर और खंडित भी दिखाई देता है। इस शरीर का नाश हो जाने पर यह भी नष्ट हो जाता है। विनाशवान वस्तु के सम्बन्ध में मुझे कोई फल दिखाई नहीं देता। आत्मा के जो गुण आपने बताए हैं, वे कहाँ रहे?''

प्रजापति ने कहा–''इंद्र, आप जो कुछ कह रहे हैं, वह ठीक है, यह बात ऐसी ही है। अब आप बत्तीस वर्ष रहकर पुन: यज्ञ आदि के साथ ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें। बत्तीस वर्ष बाद मैं आपको इसकी व्याख्या करके पुन: समझा दूंगा।'' इंद्र ने पुन: बत्तीस वर्ष तक वहाँ तप किया। तब प्रजापति ने उन्हें स्वप्न का दृष्टांत देकर आत्मा-विषयक ज्ञान दिया। उन्होंने कहा–''जो यह स्वप्न में पूजित हुआ विचरता है, वह आत्मा है स्वप्न में अपने को आप जिस रूप में देखते हो, वह आपका आत्मस्वरूप ही आत्मा है। यह अमृत है और यही ब्रह्म है।''

प्रजापति की बात सुनकर इंद्र वहाँ से शांतचित होकर चल पड़े। चल तो पड़े, किन्तु मार्ग में उन्हें फिर शंका हुई। विचार करते हुए वह इस संदेह पर पहुँचे–'जल से स्वप्न की स्थिति में अंतर तो है। यह शरीर अंधा होता है, पर स्वप्न में दिखाई देने वाला शरीर अंधा नहीं होता, वह शरीर जर्जर और खंडित होता है, किन्तु स्वप्न का शरीर ऐसा नहीं होता अथवा इसके विपरीत भी होता है। हम हर प्रकार से ठीक होते हैं, किन्तु स्वप्न में विकृत दिखाई देते हैं। यह सब होते हुए भी यह देह मारने, डांटने, डपटने, रोने आदि से प्रभावित होती है। इसी प्रकार स्वप्न के आत्म-दर्शन में मुझे कोई फल दिखाई नहीं देता।'

यही सोचते हुए इंद्र पुन: वापस लौटे और प्रजापति के पास जाकर बोले–''भगवन्, विचार करने पर मुझे स्वप्न में हुआ आत्म-दर्शन व्यर्थ जान पड़ा। मैंने देखा है कि यह शरीर अंधा होता है तो भी स्वप्न शरीर अंधा नहीं होता, यह रोगी होता है, पर वह निरोग रहता है। स्वप्न शरीर इस शरीर के दोष से दूषित नहीं होता, किन्तु फिर भी उसे कोई मारता हो, कोई प्रताड़ना देता हो और उसके कारण मानो वह अप्रिय का अनुभव करता हो, दु:ख से रोता हो, ऐसा

अनुभव होने के कारण मुझे स्वप्न में होने वाले आत्म-दर्शन में कोई उपयोगिता नहीं दिखाई देती। आप कृपया मुझे स्पष्ट समझाएँ।''

प्रजापति बोले-''देवराज! मैं आपकी जिज्ञासा समझ गया। मैं आपको समझाऊँगा, लेकिन पहले की तरह आपको फिर से बत्तीस वर्ष वहाँ रहना पड़ेगा।''

इंद्र ने बत्तीस वर्ष तक पुनः तप किया। फिर वे प्रजापति की सेवा में उपस्थित हुए। प्रजापति ने कहा-''देवराज! जिस अवस्था में वह सोया हुआ मनुष्य न तो कुछ देखता ही है और न भलीभाँति आनंद मनाता हुआ स्वप्न का अनुभव करता है, वह आत्मा है। यह अमृत है, अभय है और यही ब्रह्म है।''

यह उपदेश सुनकर इंद्र पुनः वहाँ से चल पड़े किन्तु देवताओं के पास जाने से पूर्व उन्हें फिर संदेह हुआ। उन्होंने सोचा-'यह भी ठीक नहीं है। निद्रा की जिस अवस्था में उसे ज्ञान ही नहीं होता कि यह मैं हूँ, वह दूसरे जड़-चेतन समुदाय को भी नहीं पहचानता। उस समय तो वह मानो विनाश को प्राप्त हो जाता है। निद्रावस्था के इस आत्म-दर्शन में भी कोई सार दिखाई नहीं देता।

यही सोचकर इंद्र पुनः प्रजापति के पास लौट आए। उन्होंने इंद्र से पूछा-''इंद्र, अब यहाँ किसलिए आए हो?'' इंद्र ने कहा-''भगवन्! यह निद्रावस्था वाला आत्म-दर्शन भी मुझे उपयोगी नहीं लगा। इस अवस्था में तो निश्चय ही इसे यह ज्ञान नहीं होता कि यह मैं हूँ और न यह दूसरे पदार्थों या प्रणालियों को ही पहचानता है। उस अवस्था में तो यह मानो नष्ट ही हो जाता है। इसमें भी मुझे कोई इष्टफल नहीं दिखाई पड़ता। कृपया आप मुझे फिर से समझाइए।''

प्रजापति ने कहा-''ठीक है! लेकिन आपको इस बार केवल पांच वर्ष ही तपस्या करनी होगी। उसके बाद मैं आपको इसका मर्म भी समझा दूंगा।''

इंद्र ने आज्ञा शिरोधार्य करके पाँच वर्ष पुनः तप किया। जब उसे तप करते हुए एक सौ एक वर्ष व्यतीत हो गए तो वे पुनः प्रजापति की सेवा में उपस्थित हुए तो प्रजापति ने कहा-''इंद्र! अब मैं आपको आत्म-ज्ञान का रहस्य समझाता हूँ। सुनें- जब तक आत्मा शरीर में रहती है, तब तक वह सुख-दुःखादि द्वंदों का अनुभव करती है और शरीर से पृथक हो जाने पर अपने किए पुण्य कृत्यों से जीवात्मा को मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। जैसे रथ में जोता गया घोड़ा उससे मुक्त होकर स्वतंत्रता का आनंद प्रदान करता है, उसी तरह आत्मा भी शरीर के भौतिक बंधनों से मुक्त होकर परमात्मा के निकट जाती है तथा ऐसे सुख का अनुभव करती है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। परमात्मा को पा लेना ही जीव का परम पुरुषार्थ है। उसे पाकर उसे फिर से जन्म-मरण के चक्र में नहीं जाना पड़ता। यह शरीर वास्तव में मरणशील है, यह मृत्यु का ग्रास है। यह देह अमूर्त तथा अशरीरी आत्मा का निवास स्थान है।

आत्मा जब तक शरीर में है, तब तक उसे शरीर में व्याप्त होने वाले प्रिय-अप्रिय गुणों का अनुभव होता है, शरीर में अलग होते ही आत्मा को प्रिय-अप्रिय कुछ भी अनुभव नहीं होता, वह विराट में मिल जाती है। इसे इस प्रकार समझो, नाक गंध ग्राह्य करने का माध्यम है, वह सूंघती नहीं है, जो सूंघती है वह सूक्ष्म आत्मा है। इस प्रकार देखने का काम आत्मा करती है, नेत्र नहीं। बोलने का काम आत्मा करती है, वाणी नहीं। सुनती आत्मा है, कान नहीं। मनन करने वाला सूक्ष्म आत्मा है, मन तो उसका माध्यम मात्र है। स्वाध्यायपूर्वक जो अपनी इन्द्रियों को अपने अंतःकरण में स्थापित करता है, वही आत्मा से साक्षात्कार कर पाता है।''

इस प्रकार प्रजापति ब्रह्मा द्वारा विस्तारपूर्ण आत्म-ज्ञान का रहस्य समझाने पर देवराज इंद्र संतुष्ट हो गए। फिर परम संतुष्टि का अनुभव करते हुए देवलोक चले गए।

(छान्दोग्य उपनिषद् से)

*

ज्ञान ही वास्तविक सोना अथवा हीरा है। – **स्वामी शिवानन्द**

धारावाहिक

चित्रकथा – 'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'

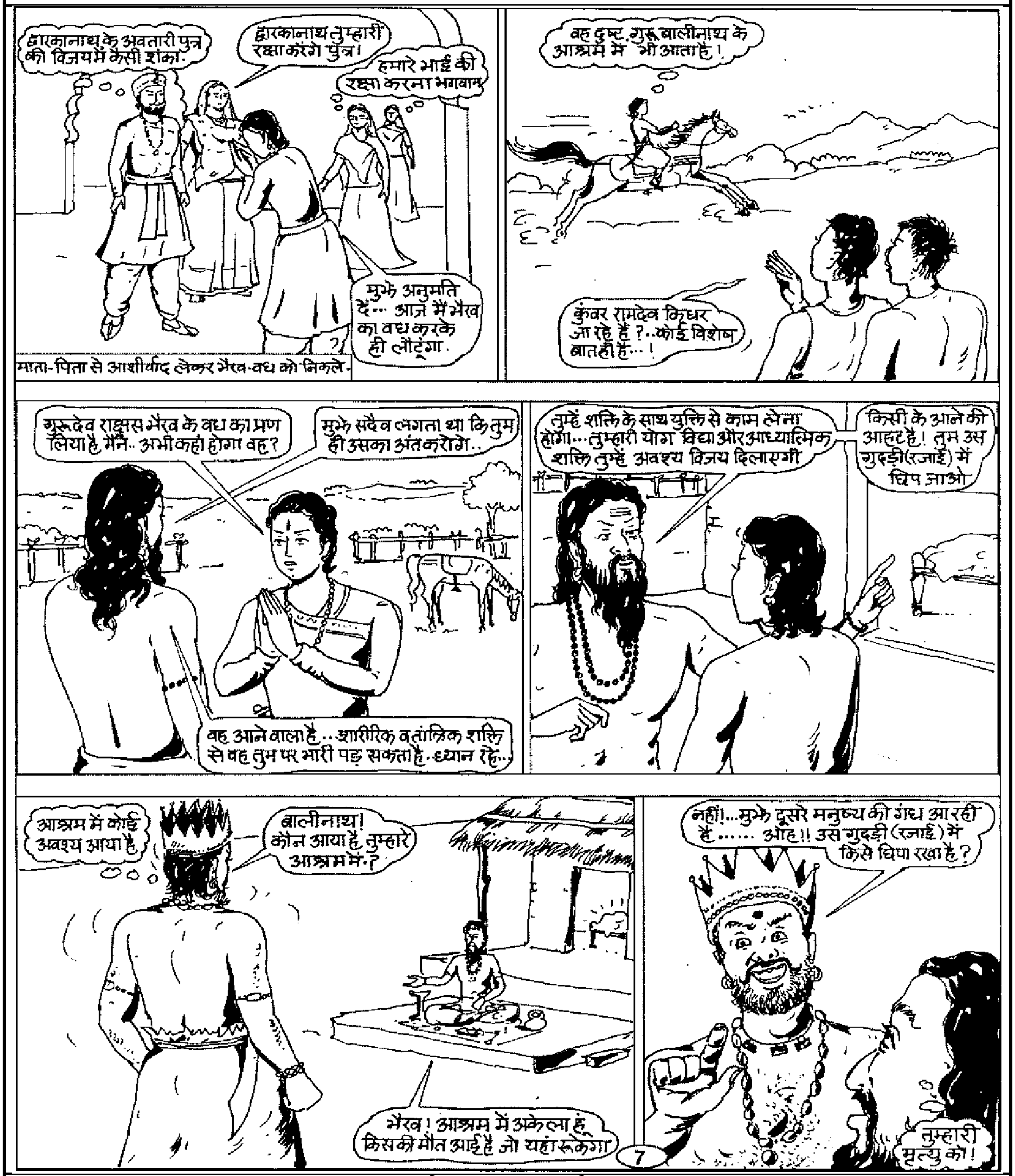

गुदड़ी हिल भी रही है! ... शिकार स्वयं शिकारी को बुला रहा है!
चल निकल बाहर गुदड़ी से भैरव का भोजन बनने को तैयार हो जा!
बड़ी है गुदड़ी! ... किंतु तुझे बचा नही पाएगी।
द्वारकानाथ ने चमत्कार कर दिया.. गुदड़ी लम्बी होती गई...
आश्चर्य!.. रामदेव साधारण बालक नहीं हो सकता
यह क्या हो रहा है? गुदड़ी का तो अंत ही नहीं... मेरे हाथ भी दर्द करने लगे हैं!
गुदड़ी में कोई मानव नहीं हो सकता.. जरूर कोई प्रेत पिसाच होगा.. यह मुझे मारने का षड़यंत्र तो नहीं
मुझे यहां से शीघ्र भाग जाना चाहिए
तेरे पाप का घड़ा भर गया है... आज तू मुझसे बच नहीं सकता.
भैरव अधिक दौड़ नहीं पाया तो..
8

अपनी बात

मानव का स्वभाव है कि उसने जो पद, धन, सम्पत्ति अर्जित की है, उसमें ही उसे संतोष नहीं होता। वह असंतुष्ट ही रहता है और यही असंतोष उसे और अधिक पद, धन, सम्पत्ति आदि जुटाने में लगाता रहता है। असंतुष्ट व्यक्ति अपनी सोच का संतोष प्राप्त करने में लगता है। जीवन में बाह्य उपलब्धियों के लिय असंतुष्ट होकर हम उन्हीं वस्तुओं में अपनी असंतोष की शक्ति, अपनी प्यास बुझाने में लगाए रहते हैं। इस जीवन का सत्य क्या है, इसकी तलाश करने के लिये तो हमारे पास कोई विचार ही नहीं है, क्योंकि उसकी हमारी प्यास ही नहीं है।

तब यह सोचना आवश्यक है, विचारणीय है कि हमारी आकांक्षा की दिशा, हमारी प्यास बाह्य उपलब्धियों की न हो और भीतर की तरफ हो जाए। भीतर के प्रति असंतोष हो। जो व्यक्ति भीतर के प्रति असंतुष्ट हो जाएगा वह अवश्य ही सत्य की खोज की आकांक्षा और प्यास को अपने भीतर जागता हुआ अनुभव करेगा। जीवन जैसा बाहर है, जीवन का जैसा विस्तार बाहर है, उससे हम परिचित हैं। लेकिन हमारे भीतर भी एक जीवन का विस्तार है, उससे हमारा कोई परिचय नहीं। परिचय न होने का कारण यह नहीं है कि हमारी क्षमता कम है और कुछ थोड़े से लोगों में ही ऐसी क्षमता है कि वे उसको पा सकें। यह कारण नहीं है। क्षमता प्रत्येक के भीतर है। योग्यता प्रत्येक के भीतर है। लेकिन हमारी प्यास भीतर की नहीं है। हम अपने होने से असंतुष्ट नहीं हैं। यह आश्चर्यजनक है। थोड़ा सोचें, विचार करें तो क्या हमें दिखाई पड़ेगा कि हमारी सत्ता जैसी है, हमारी चेतना की जैसी स्थिति है, वह संतुष्ट होने के लायक है? लेकिन हम कभी इस तरह कोई ध्यान नहीं देते। हमारा कोई ख्याल, हमारा कोई विचार इस तरफ नहीं जाता। यह ध्यान रहे कि जिस तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता उस तरफ के द्वार बन्द रह जाते हैं। ध्यान जहाँ जाता है वहीं से द्वार खुलने शुरू होते हैं। ध्यान नहीं जाता वहाँ के द्वार बन्द हो जाते हैं।

हमने शिविरों में, शाखा में बहुत बार यह देखा है कि स्वयंसेवक खेल रहा है, उसके शरीर पर चोट लग गई। खून भी बहने लगा है, मगर वह खेल ही रहा है, उसे यह ध्यान ही नहीं कि उसके शरीर पर कहीं चोट लगी है। उसके पैर में चोट लग गई हो तो खेल पूरा नहीं हो जाए तब तक उसे पता ही नहीं चलता। खेल पूरा होने पर ज्ञात होता है कि उसके पैर में चोट लगी है, खून भी बह रहा है। इतनी देर से चोट तो थी, खून बह रहा था। लेकिन उसे पता नहीं था, क्यों? क्योंकि ध्यान की धारा उस तरफ नहीं थी। ध्यान जिस तरफ जाएगा, उस तरफ ही बोध होना शुरू होता है। सन् 1920 में काशी नरेश का एक ऑपरेशन हुआ। उन्होंने कहा कि ऑपरेशन के समय मैं किसी तरह की बेहोशी की दवा लेना नहीं चाहता। तब कैसे हो पाएगा ऑपरेशन? उन्होंने कहा-मैं गीता पढता रहूंगा। जब मैं गीता पढता हूँ तो मुझे सारी दुनिया की बात भूल जाती है। डॉक्टर परेशानी में थे कि ऑपरेशन की अवधि में ध्यान टूट जाए तब क्या होगा? लेकिन ऑपरेशन हुआ। वे गीता पढते रहे, ऑपरेशन हो गया। ध्यान गीता में था तो दर्द के अनुभव का द्वार बन्द हो गया।

वस्तुत: जहाँ हमारा ध्यान होता है, केवल उसी सत्ता का हमें बोध होता है, अन्य किसी सत्ता का उस समय हमें बोध नहीं होता। हमारा ध्यान भीतर की तरफ नहीं है, बाहर की तरफ है इसलिए बाहर की दुनिया ही हमें ज्ञात होती है। भीतर की दुनिया हमें ज्ञात नहीं होती। हमारा ध्यान शरीर की तरफ है, इसलिए शरीर का हमें पता चलता है और आत्मा का हमें कोई पता नहीं चलता। लोग पूछते हैं-क्या आत्मा है? आत्मा तो जरूर है लेकिन उसकी तरफ ध्यान नहीं है। हमारा पूरा ध्यान बाहर की तरफ बंटा हुआ है। एक चीज ध्यान से हटती है तो दूसरी आ जाती है, वह हटती है तो तीसरी आ जाती है। ध्यान को कोई विराम नहीं कि उसे भीतर की ओर ले जा सकें। जीवन के प्रति असंतुष्ट होना आवश्यक है, तो ध्यान की धारा भीतर की ओर ले जा सकें। जीवन के प्रति असंतुष्ट होना आवश्यक है, तो ध्यान की धारा भीतर की तरफ आनी शुरू हो जाती है।

साधना इसी बात से सम्बन्धित है कि हमारी चेतना की धारा बाहर न बहकर भीतर की तरफ बह जाए। इसका अर्थ यह नहीं कि हम बाहर की तरफ से अंधे हो जाएँ। इसका इतना ही अर्थ है कि बाहर के जीवन में हम थोड़ा-सा विराम खोज लें और अपनी चेतना की धारा को भीतर ले जाने में समर्थ हो जाएँ ताकि एक अद्‌भुत जीवन स्रोत हमें उपलब्ध हो और हम उस समय को जान सकें जो हमारे भीतर शरीर धारण किए है। तो जीवन के उत्तरदायित्व निभाएँ पर संघ के लिये समय निकालें, वरीयता दें।

वीरवर दुर्गादास

की जयन्ती पर हार्दिक शुभकामनाएं

विरेन्द्र सिंह तलावदा
Contractor
(M) 94143-96530

गज मुक्ता में आबज्यूं फलां मांय सुवास।
ज्यूं निरमल जस नाम में अमर दुर्गादास।।

स्मारिका प्रकाशन पर हार्दिक शुभकामनाएँ -

सेना भर्ती में सर्वाधिक सलेक्शन देने वाला संस्थान ...

महाराणा प्रताप डिफेंस एकेडमी

कुचामन सिटी & सीकर

निदेशक मालसिंह राठौड़

12वीं पास करते ही सरकारी नौकरी का सुनहरा अवसर

नेवी
एयरफोर्स
आर्मी SSC

9649279205, 9983156400, 9929708188

प्रवेश चालू सीधे 10वीं करें

उम्र बन्धन नहीं **N.I.O.S** T.C.की जरुरत नहीं

कोई भी कक्षा फेल या पास किसी भी उम्र में बिना T.C. आधार कार्ड से सीधे 10वीं पास करें, 10वीं पास कर 12वीं कला, वाणिज्य, विज्ञान वर्ग में करें।

"A" ग्रेड युनिवर्सिटी से पत्राचार द्वारा घर बैठे **B.A, B.Com. M.A,** योगा में **M.A,** अच्छे अंको से पास करें।

NIOS भारत सरकार का सबसे बड़ा सरकारी ओपन बोर्ड है।

5 वीं, 8 वीं पास महिला, बुजुर्ग सीधे 10 वीं पास करें

सांगसिंह राठौड़
(प्रबंधक व समन्वयक)
9783202923, 8209091787

आदर्श सीनियर सैकेण्डरी स्कूल
सोलंकियातला तह. शेरगढ़, जोधपुर

बोर्ड फेल छात्र अभी फार्म भरकर सितम्बर में परीक्षा देकर इसी साल अगली कक्षा में प्रवेश लें।

E-Mail : adarshsktala@gmail.com www.adarshshoolsktala.com

ॐ

श्री योगेश्वर छात्रावास

घर से दूर, घर जैसा वातावरण

आयुवानसिंह नगर, कुचामन सिटी (नागौर) राज.

हॉस्टल की विशेषताओं पर एक नजर :

1. कक्षा 3 से 12वीं के विद्यार्थियों हेतु सीमित स्थान।
2. अनुशासित एवं नियमित दिनचर्या।
3. शिक्षा के साथ संस्कार निर्माण पर बल।
4. वरिष्ठ जनों का मार्गदर्शन।
5. शुद्ध, पौष्टिक एवं सात्विक आहार।
6. सभी प्रमुख शिक्षण संस्थानों के समीप स्थित।
7. सद्साहित्य, समाचार पत्रों व सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं की व्यवस्था
8. सभी सुविधाओं युक्त भवन।
9. कमजोर छात्रों हेतु विशेष शिक्षण व्यवस्था।

मो. 9772097087

रज की प्यास बुझाने वाला, पहर पहर तक प्यासा।
देश धर्म हित रहा जूझता, बिन स्वार्थ अभिलाषा।।
मारवाड़ की भोमसूं, गूंजै वाणी एक।
जद पंड़िया दिन सांकड़ा, दुरगो राखी टेक।।

वीरवर दुर्गादास जयन्ती
की हार्दिक शुभकामनाएं

IAS / RAS
तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड
Spring Board
Springboard Academy, Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda, Gopalpura, Bypass Jaipur
Website : www.springboardindia.org

अगस्त, सन् 2020
वर्ष : 57, अंक : 08

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या – Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353
E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह